पुरन्दरदास

जी. वरदराजराव

H
891.481 409 2
P 97 R

भारतीय
साहित्य के
निर्माता

H
891.4814092
P97R

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ-रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवत: यह सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

पुरन्दरदास

लेखक
जी. वरदराजराव

अनुवादक
एस्. एम्. रामचन्द्रस्वामी

साहित्य अकादेमी

Purandaradasa (पुरन्दरदास)
Hindi translation by S.M.Ramachandraswamy
of G.Varadarajrao's monograph in Kannada
Sahitya Akademi, New Delhi

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

© Sahitya Akademi
First Edition: 1991

Published by:
Sahitya Akademi
Head Office:
Rabindra Bhavan, 35, Ferozeshah Road,
New Delhi 110 001

H
891.481 409 2
P 97 R

Sales Department:
Basement in 'Swati', Mandir Marg, New Delhi 110 001

Regional Offices:
172, M.M.G.S.Marg, Dadar(East), Bombay-400014
Jeevan Tara, 23A/44X, Diamond Harbour Road, Calcutta 700053
29, Eldams Road, Teynampet, Madras-600018.

ISBN81-7201-119-9

Printed by:
Kalpana Typesetter
Plot No. 1/A, Pushpa Park
Daftary Road, Malad(East),
Bombay-400097

116080
18/11/04

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

Library IIAS, Shimla
H 891.481 409 2 P 97 R
00116080

विषय-सूची

1. पुरन्दरदास जी का पूर्व परिचय	1
2. भक्तिसाधना	8
3. पुरन्दरदास की रचनाओंका अनुशीलन	
(i) आध्यात्मिक गरिमा	13
(ii) साहित्य सौंदर्य	22
(iii) गान माधुर्य	41
4. पुरन्दर प्रशस्ति	45
5. पुस्तक-सूची	49

1. पुरन्दरदास जी का पूर्व परिचय

अपने गुरु श्री व्यासरायजी से 'दास हो तो पुरन्दरदास जैसा' की प्रशस्ति पानेवाले कर्नाटक के हरिदासवरेण्य पुरन्दरदास जी के पूर्ववृत्त को लेकर ज्यादा कुछ बता पाना कठिन है। अब तक प्राप्त प्राचीन व प्रामाणिक साक्ष्याधार हैं पुरन्दरदास जी के लगभग एक सौ बीस वर्ष बाद हुए हरिदास विजयदास की कुछ रचनाएँ। दोनों के बीच की अवधि पर ध्यान देने से हम अनुमान कर सकते हैं कि पुरन्दरदास के जीवन की अनेक घटनाएँ अब दंतकथा बन गई हैं। विजयदास जी को पुरन्दरदास जी से स्वप्न में दीक्षा प्राप्त हुई थी, अतः अपने गुरु के प्रति उनके मन में अत्यन्त पूज्यभाव का रहना सहज है। इसलिए कह सकते हैं कि उन्होंने अपने समय में पुरन्दरदास से सम्बंधित सारी सामग्री को एकत्रित करके उसे एक रूप दिया है। विजयदास के प्रमुख उल्लेखों के आधार पर अब हम पुरन्दरदास के पूर्ववृत्त को इस तरह प्रस्तुत कर सकते हैं :

"पुरन्दरदास पुरन्दरपुर के सुनार वरदप्पा के पुत्र थे। कुछ लोग इन्हें साक्षात् नारद मुनि का अवतार मानते हैं। लोकोद्धार के लिए उन्होंने अवतार ग्रहण किया था। (इन्हें श्रीनिवासनायक या कृष्णप्पनायक कहकर पुकारने की सूचना मिलती है। विजयदास ने संकेत किया है कि ये वरदप्पा के पुत्र थे। इन्हें वे पुरन्दरदास कहकर सम्बोधित करते हैं।) ये कुछ समय तक सांसारिक सुखोपभोग में लीन थे। इन्हें ज्ञानोदय कराने हेतु विप्रवेषधारी बनकर स्वयं श्रीहरि महाकृपण श्रीनिवासनायक के पास पहुँचे और अपने पुत्र के जनेऊ के वास्ते धनसहायता की प्रार्थना की। श्रीनिवासनायक ने तो ब्राह्मण देवता को छः महीनों तक सताया। अन्त में निरुपाय होकर अपने पास इकट्ठी हुई कानी-कौडियों की ढेर सामने लगाकर ब्राह्मण का उपहास किया, 'चाहे जो चुन लो'। श्रीनिवासनायक को सबक सिखाने के उद्देश से वेषधारी श्रीहरि उसकी सुशीला पत्नी के पास पहुँचे। उसे अपनी दुःखगाथा सुनाकर उससे अपने बेटे के उपनयन के लिए अपनी नकबेसर प्रदान करने की प्रार्थना की। उस धर्मपरायणा देवी ने ऐसा ही किया। अब वह मायाविप्र नकबेसर बेचने को श्रीनिवासनायक ही के पास पहुँचा। नकबेसर को देखते ही नायक का माथा ठनका; सन्देह हुआ कि यह अपनी पत्नी ही की है। ब्राह्मण को प्रतीक्षा करने के लिए कहकर तुरन्त घर पहुँचा। उसका शक ठीक निकला। पत्नी की नाक से नथ नदारद थी। तत्काल उसे प्रस्तुत करने के लिए मजबूर किया। श्रीनिवासनायक की पत्नी पसोपेश में पड़ गई। विवश हो विषपान करने के लिए उद्यत हुई और कटोरे को मुँह तक ले

गई। तभी मोती की बेसर की कटोरे में गिरने की आवाज हुई। इसे करुणाकर की कृपा मानकर बेसर को पति के हाथों सौंप दी। श्रीनिवासनायक चकित हुए। दूकान में बंद नथ गायब थी। इधर प्रतीक्षा करनेवाला ब्राह्मण भी नदारद। अन्त में पत्नी के पास पहुँचे। (विजयदास जी ने उस साध्वी का नाम नहीं लिया है। किन्तु, कई लोगों ने उसे लक्ष्मीबाई कहा है तो कुछ औरों ने सरस्वतीबाई कहा है।) उससे घटना का विवरण सुनकर नायक जी को ज्ञानोदय हुआ। उन्होंने समझ लिया कि पधारनेवाले परमात्मा ही होंगे। तत्क्षण अपना सर्वस्व त्यागकर परिवार के साथ विजयनगर पहुँच गये। वहाँ, परम विरक्त श्रीनिवासनायकजी ने श्री व्यासतीर्थ जी के दर्शन किये और उनसे 'पुरन्दर विठ्ठल' का विरद पाकर हरिदास दीक्षा में दीक्षित हो गये। विजयदास जी तो उनके एक-एक पुत्र को भी देवांशसंभूत ठहराते हैं-'वरदप्पा सोम हैं, गुरुराय दिनकर; गुरु मध्वपति ही भृगु हैं, अभिनव हैं जीव'। उनके ये पुत्र भी हरिदास दीक्षा को ग्रहण कर कृतिरचना से कृतार्थ हुए। उनके जमाने में पुरन्दरदास के इस अभूतपूर्व मन:परिवर्तन और असाधारण साधना के आधार पर घटित कई लोकोत्तर घटनाओं का उल्लेख विजयदास ने किया है। नारद के अवतार पुरन्दरदास जी की बानी और उनके गीत वेदोपम हैं।"

विजयदास जी ने अपनी लगभग तेईस रचनाओं में बारंबार पुरन्दरदास जी की स्तुति की है। इससे अपने दीक्षा-गुरु के प्रति उनकी अतिशय भक्ति प्रकट होती है। इसी तरह विजयदास के समसामयिक और उनके बाद हुए हरिदासों ने भी मुक्तकंठ से पुरन्दरदासजी का गुणगान किया है। इनमें जगन्नाथदास और प्रसन्नवेंकटदास मुख्य हैं। इन सबकी रचनाओं के समग्र अनुशीलन से विदित होता है कि पुरंदरदास के वैकुण्ठवास के एक सौ वर्ष बाद तक लोगों में उनके प्रति पूज्यभाव दृढ हो चला था। वे नारद के अवतार माने जाने लगे थे और उनके जीवन में अनेक अलौकिक घटनाओं के घटित होने का विश्वास जड़ जमा चुका था। संक्षेप में कह सकते हैं कि उनके जीवन का पूर्वार्ध जितना लौकिक था उत्तरार्ध उतना ही अलौकिक माना जा सकता है।

विजयदास जी द्वारा एकत्रित सामग्री के विश्लेषण से पुरन्दरदास के पूर्ववृत्त के कई तन्तु स्पष्ट हो जाते हैं। यह निर्विवाद है कि पुरन्दरदास के मन:परिवर्तन की प्रेरकशक्ति उनकी धर्मपत्नी ही हैं। यद्यपि पुरन्दरदास ने इस अपूर्व घटना का विवरण नहीं दिया है, फिर भी उसके जरिए हुए आत्मपरिवर्तन का बहुत ही उज्ज्वल चित्रण प्रस्तुत किया है। निम्नांकित पद में हरिदास-जीवन में उनके प्रवेश की अग्रिम सूचना प्राप्त होती है।

जो भी हुआ, भला ही हुआ ॥टेक॥
प्रभु श्रीधर की सेवा के लिए साधन-संपत्ति जुटी ॥उपटेक॥
एकतारा और लकुटी को न हाथ लगाता,
मारे शर्म के तो सिर झुक जाता,

पत्नीकुल फूले-फले खूब जगत में,
एकतारा लकुटी को थमा दिया हाथ में॥

हाथ में धर भिक्षा के पात्र को,
भूपति मान इठलाता था अपने को,
पत्नी का कुल अक्षय हो,
कह दिया 'भिक्षापात्र हाथ में ले लो'॥

तुलसी माला गले में न पहनता,
राजा मान कर था शरमाता,
सरसिजाक्ष श्री विठ्ठल पुरन्दर,
ने पहना दी तुलसीमाला अति सुंदर॥

इस पद में पुरन्दरदासजी ने दुराव-छिपाव के बिना स्पष्ट किया है कि हरिदास की वेशभूषा धारण करके उन्होंने जो आनन्द पाया है, उसका सारा श्रेय उनकी पत्नी को ही है। 'जो कुछ हुआ अच्छे के लिए ही हुआ, हमारे श्रीधर की सेवा के लिए साधन संपन्न हुआ।' यह कथन उनके जीवन में किसी अकल्पनीय घटना के घटित होने की सूचना देता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि इस घटना ने श्रीधर की सेवा के लिए उन्हें किस प्रकार प्रेरित किया। घटना ने उनके समग्र जीवन को किस हद तक प्रभावित किया, इसका विवरण इस पद के तीनों चरणों में क्रम से दिया गया है। उन्होंने कहा है कि वे अपने को 'भूपति', 'राजा' मान कर इठलाते रहे। इससे स्पष्ट होता है कि वे कितने धनी थे। इस तरह छाती फुला कर डोलनेवाले व्यक्ति का, पत्नी की बात मान कर झोली लटकाए, एकतारा धरे रास्ते में निकल पड़ना क्या कोई मामूली बात है? अन्त में सरसिजाक्ष श्रीमन्नानारायण की प्रेरणा से वे तुलसीमाला भी पहन लेते हैं। लगता है कि सब कुछ किसी अलौकिक घटना की ओर संकेत कर रहा हो।

दूसरी बात यह है कि पुरन्दरदास जी पूर्वाश्रम में वणिकवृत्ति करते थे। इसका साक्षीस्वरूप और एक पद है जिसमें उन्होंने अपने जीवन के अतीत और वर्तमान का तुलनापरक चिन्तन किया है।

अब ऐसा व्यापार हमारा हुआ॥ टेक॥
श्रीपति के चरणारविंद की सेवा का॥ उपटेक॥

गुरुकृपा ही साफा है, हरिकृपा ही अंगरखा,
हरिदासों की दया बनी है उत्तरीय चंगा,
परम पापी कलि रूपी पगतरी पहने,
दुर्जनों की छाती पर है निरन्तर चलने॥

मुँह है कलमदान, हृदय ही है कागज,

बनी जिव्हा है सुन्दर कलम आज,
श्रीलोल श्रीहरि के दिव्य नाम, दिव्य कथा,
निर्मल मन से लिख उन्हें सौंपने की व्यथा॥

इस व्यापार ने भवबाधाओं को दिया है मेट,
भय हमेशा को गया है छूट,
जैसे पुराने सारे कर्मों से बनाकर उऋण,
प्रभुने हिसाब-किताब ही बंद कर दिया तत्क्षण॥

बात - बात पर पुलक, आनन्दबाष्प बहे,
ईश सेवा में अर्पित हस्त बटुए में जाने से रहे,
भक्ति के परम फल को अंतिम वेतन बना,
सदा के लिए पहले का व्यापार कर दिया मना॥

हेठी होती थी ऐंरे गैरों के पांव पड़कर,
अब औरों के सामने कभी न झुकेगा यह सर,
पुंडरीकाक्ष श्री पुरन्दर विठल ने देकर दर्शन,
मुझे इस सेवा का बीडा दिला दिया जबरन॥

अपने पूर्वाश्रम में प्रवृत्त लौकिक व्यापार की तुलना अब स्वीकृत परमात्मा की पादारविन्द-सेवा के नूतन व्यापार से करके पुरन्दरदास ने दोनों के महद् अंतर को इस पद में गाया है। वर्षों तक वणिकवृत्ति की लेनदेन में उनका मन निमग्न रहा। जब वह अपने आप चेत गया, तो आत्मविश्लेपण में लगना उसके लिए सहज स्वाभाविक था। लौकिक व्यापार में लगे दास जी का व्यापार - विधान जब अलौकिक बना तो उनकी दृष्टि में जो परिवर्तन हुआ उससे वे बहुत ही सन्तुष्ट हुए। उनकी यह आत्मतुष्टि इस पद के हर चरण में गूँजती है। तब की वेशभूषा और अब के परिधान में कैसा अन्तर है? वह वस्त्रवैभव था तो यह आत्मोन्नति का आचरण। 'हरि की करुणा ही कवच है, तो गुरु का वात्सल्य पगड़ी है। हरिदासों की दया उत्तरीय है। परम पापी कलिरूपी जूतों को पहनकर दुरात्माओं को दंडित करने के मार्ग पर हम निकले हैं।' पहले वे जो सफ़ेद कागज, दवात, कलम व लेखों का उपयोग करते थे उन वस्तुओं के और आज उपयोग में लानेवाले हृदय, मुँह, रसना और भगवन्नाम के स्वरूपों के अन्तर का पुरन्दरदास ने बहुत ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। जहाँ पूर्वाश्रम की एक - एक वस्तु बाह्य - परिकर मात्र रह जाती है वहीं आज उपयोग में आनेवाला हर एक साधन आध्यात्मिक लक्ष्य के अनुकूल अत्यन्त आत्मीय सिद्ध हुआ है। जहाँ पहले का उनका व्यापार आगामी कर्मों के लिए कारणस्वरूप रहा, वहाँ आज की हरिसेवा उस ऋण से मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं। ऋण चुकने के बाद ऋणपत्र को फाड़कर व्यवहार को समाप्त करने की पद्धति को

उपमान के रूप में प्रस्तुत करना उनकी पूर्ववृत्ति का अवशेष कह सकते हैं। प्रकृत व्यापार से वे अत्यन्त लाभान्वित हुए। बात-बात पर आनन्दाश्रु निकल पड़ते थे और शरीर पुलकित हो उठता था। धन की थैली से सदा चिपके रहनेवाले हाथ अब भगवान की सेवा के लिए समर्पित हैं। इस व्यवसाय में उन्हें प्राप्त वेतन है मुक्ति! इससे पहले वणिकवृत्ति में सफलता हेतु ऐरे-गैरे नत्थू खैरे का सत्कार करना पड़ता था। उनके सामने सिर झुकाना पड़ता था। अब वे इस संकट से पार हो गये। यह उक्ति कि स्वयं भगवान ने उन्हें समझाकर अपनी सेवा का न्योता दिया, ध्यान देने योग्य है। वह रईसी ठाठ और वृत्ति का वैभव अलग और प्रीति, भय, भक्ति व विनय से परिपूर्ण भगवान के प्रति यह भक्तिभाव अलग है। पहले पद में जहाँ आत्म परिवर्तन का प्रकाश परिलक्षित होता है वहाँ प्रकृत पद में आत्मसमर्पण की संतुष्टि झलकती है और परमानन्द का परिचय प्राप्त होता है।

पुरन्दरदास जी के जीवन में घटी ये महत्त्वपूर्ण घटनाएँ उसी स्थान में घटित हुई होंगी जहाँ वे अपने बालबच्चों और पत्नी के साथ रहा करते थे। विजयदास जी ने तो बताया है कि यह स्थान पुरन्दरगढ है। किन्तु, विद्वानों का कहना है कि आज महाराष्ट्र में स्थित पुरन्दरगढ में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता जिससे पता चले कि पुरन्दरदास जी वहाँ रहा करते थे। उस स्थान की आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व की स्थितिगति को ध्यान में रखकर ही सत्य को ढूँढ निकालना उचित होगा। इसी बीच श्री कपटराळ कृष्णराय ने यह सुझाया है कि कर्नाटक राज्य के मलेनाड के अरग प्रान्त में बहुत पहले से ही विठ्ठल भक्ति की प्रधानता लक्षित है। यहाँ के क्षेमपुर का दूसरा नाम है पुरन्दरपुर। अत: यही पुरन्दरदास का आवासस्थान हो सकता है। अब तक इस मत को कई विद्वानों का समर्थन भी मिल गया है। कुछ भी हो, यदि पुरन्दरदास के आवासस्थान के अन्वेषक उनके दासनाम से स्थाननाम को जोड़ने का यत्न करेंगे, तो घाटे में रहेंगे। उनका प्रयास सफल नहीं हो सकता। यह ढूँढ निकालना होगा कि विजयनगर साम्राज्य के समय प्रमुख वाणिज्यकेंद्र कौन कौनसे थे और यह भी पता लगाना होगा कि उनमें से किस केन्द्र में पुरन्दरदास जी के पूर्वज व्यवसाय किया करते थे। तब कहीं जाकर इस पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। अब तो इससे अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। श्रीधर की सेवा करने श्रीनिवासनायक श्री व्यासराय के दर्शनार्थ विजयनगर गये, इसका उल्लेख स्वयं पुरन्दरदास जी ने किया है। अब इसी की चर्चा करना समीचीन लगता है।

श्रीनिवासनायक जो पहले परम लोभी थे, बाद में परम विरक्त बन गये और विजयनगर में श्रीव्यासतीर्थ जी के दर्शन करके उनसे 'पुरन्दरविट्ठल' की उपाधि प्राप्त कर सके। श्रीव्यासराय पर लिखे एक 'सुळादि' (पद का प्रकारान्तर) में श्री पुरन्दरदास ने इस संदर्भ का सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया है। हम यहाँ उन अंशों पर ध्यान देंगे जो उनके जीवन पर सीधा प्रकाश डालते हैं।

श्री व्यासराय जी के चरणकमलों के दर्शन,

मिले जन्मों के पुण्यफल अति पावन,
पुरखों की सहस्रों पीढ़ियाँ बन गईं अमर।
दोष रहित श्री पुरन्दर विठ्ठल के अब,
दासों की कृपादृष्टि मुझ पर पड़ी जब,
मैं हरि भजन का अधिकारी बना सत्वर॥

उपयुक्त चरणों के देखने से कोई भी समझ सकता है कि श्रीव्यासराय के दर्शन मात्र से पुरन्दरदास को कैसा आनन्द प्राप्त हुआ था। वे इसे अपने महापुण्य का सुफल ही मानते थे। इससे पूर्व श्रीव्यासराय जी को इतनी निकटता से देखने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त रहा था या नहीं, यह कोई नहीं जानता। 'गुरुदर्शन से कई पीढ़ियों के पूर्वज पार हो गए; साथ ही मुझे 'श्रीश' को भजने का अधिकार मिल गया।' पुरन्दरदास जी की इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि इससे उन्हें कैसा पुण्य उपलब्ध हुआ! इसी पद के अन्त में उन्होंने यह भी कहा है, 'गुरु व्यासराय के चरण ही मेरे लिए आसरा है, मैंने उन्हींकी कृपा से पुरन्दर विट्ठल को पहचाना।' इससे यह भी स्पष्ट होता है कि श्रीव्यासराय जी ने 'पुरन्दरविट्ठल' नामक जो चिन्ह प्रदान किया उससे उनका जीवन किस प्रकार कृतार्थ हुआ। लगता है कि आनन्दविभोर होकर उन्होंने एक उगाभोग (पद विशेष) भी कहा है, 'आज का वार शुभ वार है, यही घड़ी शुभघड़ी है; आज का योग ही शुभयोग है और आज का करण ही शुभकरण। आज का दिन मैंने पुरन्दरविठ्ठल का गुणगान किया है, इसलिए आज का दिन ही शुभदिन है।'

उस समय श्री व्यासराय जी ने आध्यात्मिक क्षेत्र में बड़ी उन्नति की थी। उन्होंने 'न्यायामृत', 'तर्कताण्डव', 'चन्द्रिका' जैसे सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की थी। अन्य मत के पंडितों को शास्त्रार्थ में परास्त कर अपने मत की गरिमा प्रतिष्ठित की थी। सबसे बढ़कर उन्होंने श्रीकृष्णदेवराय पर आ पड़ी कुहुयोग की विपत्ति का निवारण किया था। श्री आर. एस. पंचमुखी की राय में यह घटना स. ई. 1520 के आसपास घटी होगी (श्री पुरन्दरदास का जीवनवृत्त, 1956, पृ. 51)। उन्होंने यह भी सुझाया है कि यह संब उल्लेख करते समय पुरन्दरदास जी की आयु कम से कम चालीस की रही होगी।

पुरन्दरदास द्वारा श्रीव्यासराय जी पर रचित सुळादि में न केवल पूज्य गुरु के जीवन की श्रेष्ठता दृष्टिगोचर होती है बल्कि ऐसे सुयोग्य गुरु को पानेवाले पुरन्दरदास का सौभाग्य भी सुस्पष्ट रूप से लक्षित होता है। इन गुरु-शिष्य का अव्याज प्रेम श्रीव्यासराय विरचित पद 'दास हो तो पुरन्दरदास जैसै' में फूट पडा है। शालिवाहन शक 1447 (सन्. ई. 1526) के कमलापुर के ताम्रलेख में बताया गया है कि कृष्णदेवराय द्वारा दी गई व्यास समुद्र की जागीर को श्रीव्यासतीर्थ ने विभाजित कर पुरन्दरदास के पुत्र लक्ष्मणदास, हेबणदास तथा मध्वपदास को दान में दे दी थी। इसी लेख से पता चलता है कि पुरन्दरदास जी वसिष्ठ गोत्र के तथा यजुरशाखा के थे। इधर इन ऐतिहासिक दस्तावेजों से जहाँ कई

नये तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है उधर ही अनेक असंगतियाँ भी उभर आती हैं। जहाँ विजयदास ने पुरन्दरदास के वरद, गुरुराय, मध्वपति व अभिनव नामक चार पुत्रों का जिक्र किया है वहीं उपर्युक्त लेख में तीन ही पुत्रों का उल्लेख मिलता है। मध्वपति के नाम को छोड़कर बाकी दोनों नाम भी भिन्न हैं। इस लेख से पता चलता है कि श्रीव्यासराय को न केवल पुरन्दरदास के प्रति स्नेह था बल्कि उनके पुत्रों के प्रति भी वात्सल्य था। अन्य व्यतिरेकों की चर्चा यथा स्थान की जाएगी। पुरन्दरदास के पुत्र मध्वपति ने 'मध्वपति विट्ठल' के काव्यनाम से लिखे गये पदों में से एक में बताया है कि अपने पिताश्री का वैकुण्ठवास 'रक्ताक्षि संवत्सर पुष्य वहुळ की अतिशय अमावास्या मन्दवार' को हुआ जो एक समकालीन प्रमाण है। अत: हमें मानना पड़ता है कि सन्.ई. 1564 को वे दिवंगत हुए। विद्वानों ने अनुमान किया है कि दासदीक्षा लेते समय उनकी आयु लगभग चालीस की रही होगी। उसके बाद वे 44 वर्ष हरिदास बने रहे। संक्षेप में कह सकते हैं कि वे सन्. ई. 1480 से 1564 तक जीवित रहे।

पुरन्दरदास से सम्बंधित उपर्युक्त विषयों के विश्लेषण से व्यक्त होता है कि वे एक जमाने में वणिकवृत्ति में व्यस्त रहे; कई मानव सहज दुर्वलताओं के वे भी शिकार रहे; पत्नी से ज्ञानोदय हुआ और वे परम विरक्त बन गए; श्री व्यासराय के दर्शन कर उनसे दीक्षा प्राप्त करके हरिदास हुए। इन आन्तरिक व प्राचीन साक्ष्यों के आधार पर और विजयदास कृत कई रचनाओं के परिशीलन से यह अनुमान लगा सकते हैं कि पुरन्दरदास जी के जीवन की दैनिक घटनाओं ने किस प्रकार शाखोपशाखाओं में विकसित होकर दन्तकथाओं का रूप धारण कर लिया है। महात्माओं के जीवन से सम्बंधित ऐतिहासिक घटनाओं का समय के साथ इतिहास बन जाना सहज है। यहाँ इन दन्तकथाओं के पीछे छिपे ऐतिहासिक तथ्यों को यथासाध्य निरूपित किया जाता है।

2. भक्तिसाधना

श्रीनिवासनायक जब श्रीनिवास के गायक बने तो उन्होंने कन्धे पर झोला लटकाये, एक हाथ से झाल, दूसरे में एकतारा बजाते हुए परिवारजन के साथ हरिदास बनकर जीवनयापन करने का महान् संकल्प कर लिया था। किन्तु, लक्ष्यसिध्दि के लिए पुरन्दरदास जी को बहुत प्रयास करना पड़ा। आत्मनिवेदन व आत्मावलोकन से सम्बंधित उनकी रचनाओं के अध्ययन करने से उनकी इस अनवरत साधना के विविध चरण स्पष्ट गोचर होते हैं।

लगभग चार दशकों तक संसार रूपी भँवर में फँसे रहने के बाद उससे बचकर निकलना बहुत आसान नहीं है। अपने चित्त की चंचलता को उन्होंने तरह - तरह से अंकित किया है। 'मन को रोकना दुस्तर है, चपल चित्त पर काबू पाना कठिन कार्य है' कहकर वे कहीं विव्हल होते हैं और कहीं पारिवारिक प्रेम की जंजीर को तोड़ फेंकने के लिए त्रस्त हो उठते हैं, 'परिवार के प्रेम से मैं परास्त हूँ, घर-गृहस्थी मुझे गुमराह कर रही है; पुत्रमोह ने मुझे मतिमंद बना दिया है; इस मायाजाल से मुक्त करके सद्बुद्धि प्रदान करो श्री पुरन्दर विट्ठल'। 'भूख-प्यास से दिन में तुम्हारा ध्यान नहीं किया, रात भर नींद की वजह से तुम्हारा स्मरण नहीं किया; मैं दोनों ओर से मारा गया हूँ, पुरन्दरविट्ठल' कहते हुए अपनी शारीरिक दुर्बलता के लिए वे पछताते हैं। आत्मग्लानि से यह कहते हुए, 'न जाने कब मुक्ति मिलेगी, न जाने कब तुम्हारी कृपादृष्टि मुझ पर होगी' अपने इष्टदेव में अपना अचल विश्वास व्यक्त करते हैं और उन्हीं की शरण जाते हैं, 'मैं तुम्हारा ही गुणगान करता हूँ, और तुम्हारा ही संकीर्तन, तुमसे ही माँगता हूँ, और अनुरोध भी करता हूँ। तुम्हारे चरणों में सीस नँवाता हूँ और अशीष माँगता हूँ; मैं तुम्हारे सेवकों का हाथ बँटाता हूँ; तुम जैसे पालनहार अन्यत्र कहाँ, हे देवादिदेव पुरन्दरविठ्ठल....'। 'इंद्रियों के आक्रमण से बचने का उपाय कब तक सीखूँगा, हे कृष्ण!', 'तरह-तरह के त्रितापों को मिटाकर चित्तस्थैर्य को मैं कब पा सकूँगा, कृष्णा!' जैसी उक्तियों द्वारा वे बारबार अपनी तड़प दिखाते हैं। वे पुनःपुनः प्रार्थना करते हैं, 'मुझे अपना दास बना लो, करुणानिधान! क्या अपने भक्त को इतना कोई सताता है?' 'हर दिन मैं यह विनती करता हूँ कि भगवान, मुझे अपनी अचल भक्ति प्रदान करो' - इस तरह वे अपनी मनोकामना स्पष्ट करते हैं। इस कार्य में जितना विलंब होता है उतना ही उनका दैन्य बढ़ता है, 'मेरा विनती करने का मुँह कहाँ है, मैंने तो अनन्त अपराध किये हैं?' इस प्रार्थना के

साथ मन में घर किये हुए विविध प्रकार के मोह, विविध मद और विभिन्न प्रकार की कामनाओं की सूची बनाकर पेश करते हैं। इसी भाव में आगे बढ़कर वे अपने अपराधों का विशद वर्णन करते हुए क्षमायाचना करते हैं, 'मेरे सारे अपराधों को क्षमा करो, गर्व और अहंकार से मेरी रक्षा करो'। वे कभी कभी आत्मनिन्दा पर भी उतर आते हैं, 'पापियों में मैं महा पापी हूँ और क्रोधियों में महाक्रोधी, कोपताप की व्याधि को दूर कर मेरा उद्धार करो, श्रीहरि!' 'तुम ही मेरा भरोसा हो, मेरे गुणदोषों पर ध्यान न देकर मुझे तारो,' यह विनती करते हुए कहते हैं, 'जैसे माता शिशु का पालन करती है वैसे ही सदय होकर मेरा पालन करो - हे दाता पुरन्दरविट्ठल!' प्रार्थना करते ही परमात्मा भी प्रत्यक्ष कहाँ होते हैं? भक्त को अच्छी तरह कसौटी पर कसकर परखने के बाद ही उसको तारते हैं। पुरन्दरदास जी भी इस परीक्षा के अपवाद नही हैं। उनका हृदय हरि के लिए तरस-तरस कर किस प्रकार हताश हुआ, इसे उनके कई पदों के द्वारा जाना जा सकता है। इस विव्हल स्थिति को चित्रित करनेवाली एक-दो रचनाओं को देख सकते हैं।

'मातापिता ने मुझे तुम्हारे हाथों कभी का बेच डाला, अत: तुम मेरी रक्षा नहीं करोगे तो भक्तवत्सल क्यों कहलाते हो, हे भगवान? मैं अब प्रतीक्षा नहीं कर सकता, न ही तुम्हारी उपाधि की परवाह करता हूँ, मेरा उद्धार करो- हे सात्विक देव, प्रख्यात पुरुष पुरन्दरविठ्ठल!' इस प्रकार आर्तनाद करनेवाले भक्तवर अपनी तेवर बदलकर भगवान को उलाहना देने लगते हैं,'तुम्हारा भरोसा करके, बताओ इस संसार में से कौन पार हुआ है, हे हरि? मुझे तो एक व्यक्ति भी ऐसा दिखाई नहीं देता।' इस बात की पुष्टि के लिए मयूरध्वज का परीक्षा-प्रसंग, भृगुमुनि के पाँव और नेत्रभंग, त्रिपुरासुर की पत्नियों का मानभंग, कर्ण की दारुण-मृत्यु, बलि सम्राट का पातालवास, पूतना के प्राण-हरण आदि प्रसंगों का उल्लेख भी किया है। अन्त में वे मज़ाक भी उड़ाते हैं,'हे गरुडवाहन! मैं तुम्हारे स्वभाव को समझ ही नहीं सकता क्योंकि तुम भिक्षावृत्ति से जीनेवाले दासों से भी कर वसूल करते हो। हे हरि, पुरन्दरविठ्ठल! सुनो, तुम्हारे भरोसे तो भीख भी नहीं मिलती।' फिर व्यग्र होकर आवेश से पूछ बैठते हैं, 'जब तुमने भक्तवत्सल की उपाधि धारण की है, तो क्या तुम्हें उनके अधीन न होना चाहिए?' पुरन्दरदास की इस अन्तहीन उद्विग्नता को बारबार अभिव्यक्त करनेवाले अनेक पद मिलते हैं। इस प्रकार उनका हृदय तड़प-तड़प कर जब परिपक्व होता है तब धीरे-धीरे उन्हें भगवान के दर्शन होते हैं। उनके पदों में इन विविध चरणों को पर्याप्त रूप से पहचान सकते हैं।

मन को मुकुन्द के चरणारविन्द में समर्पित करनेवाले पुरन्दरदास जी को स्वप्न में भगवान के दर्शन क्या हुए आनन्दविभोर होकर वे नाच उठे, 'मैंने स्वप्न में गोविंद को देखा, कनकरत्नों की खान नन्दनन्दन मुकुन्द के चरण देखे।' स्वप्न में दर्शित उस स्वामी की सुन्दर मूर्ति का नख से शिख तक संपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करते हैं। 'श्रृंगार मूर्ति पुरन्दर विठ्ठल' को आँखों से देख, उनका गुणगान कर अन्त में स्वप्न के टूटते ही आनन्द विभोर होकर कह उठते हैं,'आँखों से देख लिया और भवभय मिट गया!' यह है पुरन्दरदास

के दिव्यानुभव का प्रथम चरण। उनकी हताशा अब काफूर हो गई। उनकी महद् आशा सर्वत्र व्याप्त हुई। एक बार भगवान को भक्त पर प्रसन्न होने की देर है फिर भक्त जब जब बुलाता है तब तब भगवान प्रत्यक्ष हो जाते हैं। पुरन्दरदास ने स्वयं इसका अनुभव किया था। कभी 'कृष्णमूर्ति मेरी आँखों में विराजमान हैं' कहते हुए मुकुट से लेकर नूपुर तक भगवान का वर्णन करते हैं तो कभी 'मैंने आँखों से देखा कृष्ण को' दर्शन किये मैंने गोविंद के, पुण्डरीकाक्ष पाण्डव पक्षी कृष्ण के' कहकर प्राप्त भगवद्नुभूति की महिमा गाते हैं। 'तुम्हारे भरोसे किसका उद्धार हुआ, हरि!' कहकर उपालंभ देनेवाले दास जी अब यह गाने लगे, 'भगवान की शरण गये किसका उद्धार नहीं हुआ? वह न तरा जिसने विश्वास न किया'। उनके मन में हुए आत्मविश्वास के विकास को देखकर आश्चर्य होता है। उनका संतृप्त चित्त यहीं नहीं विरमता, वे अब दूसरों को धीरज बंधाने की स्थिति में पहुँच गये हैं, 'संदेह क्यों करते हो कि भगवान कहाँ है? जहाँ भक्त पुकारे वहीं उपस्थित होते हैं भगवान'। इसके लिए प्रह्लाद, अजामिल, गजेन्द्र, द्रौपदी आदि के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कह सकते हैं कि यह अलौकिक अनुभव पुरन्दरदास जी के साधना-पथ में एक महत्त्वपूर्ण चरण है।

सदा भगवद् साक्षात्कार के लिए पुरन्दरदास जी लालायित रहे। किन्तु भगवान से अनुग्रहीत हो जाने पर सदा स्वामी की सेवा में लगकर जीवन को सार्थक बनाने की उन्हें इच्छा हुई। निरन्तर भगवान की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त देवी लक्ष्मी के सुकृत को स्मरण करके उनके भाग्य की यों सराहना करते हैं, 'कैसी धन्या हैं लक्ष्मी, कैसी मान्या हैं जो श्रीहरि की सेवा में सानुराग संलग्न हैं।' अपने जैसे हरिदासों के लिए उनकी सेवातत्परता को आदर्श मानते हैं। विदुर के यहाँ चुल्लू भर दूध पीकर दूध की नदी बहानेवाले भगवान की भक्तवत्सलता से विभोर होकर वे गा उठते हैं, 'हे पद्मनाभ! यह विदुर का भाग्य है, मैं विस्मय से नतमस्तक हूँ।' दास जी आप भी यह सौभाग्य प्राप्त करना चाहते हैं। 'श्रीपति जो शिशुरूप में हैं, यह गोपी का भाग्य है,' कहकर उनके पुण्य की प्रशंसा करते हैं और आप गोपी द्वारा बालगोपाल की सेवा को, लालनपालन को, विस्फारित नयनों से देखकर उनका विशद वर्णन प्रस्तुत करते हैं। 'मैं कब श्रीहरि को छाती से लगाऊँगा? उन्हें चूमकर पुचकारूँगा? बालगोपाल से जी भर मीठी-मीठी बातें करूँगा?' दास जी के इस पद से स्पष्ट होता है कि वे भी गोपी के भाग्य के इच्छुक रहे। तरह-तरह से नन्दनन्दन की सेवा करने के लिए उनका जी तरसता है, 'बसो कृष्ण, मल्लमर्दन श्रीवल्लभ! बसो मेरे हृदय में सदा...मैं तुम्हें चूम लूँ, ताली बजाते हुए तुम्हारा गुणगान करूँ'। माधव की मूर्ति को मन में सदा स्थापित करके रमने की दास जी की हरिसेवा-दीक्षा सचमुच सराहनीय है।

एक ओर दैवसाक्षात्कार से और दूसरी ओर चित्तसाफल्य से संतृप्त पुरन्दरदास जी को अपनी भिक्षावृत्ति पर अतीव गर्व है। इस मधुकरी वृत्ति से प्राप्त आनंदातिरेक का सुन्दर वर्णन अपने एक पद में दास जी प्रस्तुत करते हैं।

मधुकरी - वृत्ति मेरी, यह अति सुंदर वृत्ति मेरी ॥ टेक ॥
पद्मनाभ के पादपद्मों का मुध्रुप बन कर ॥ उपटेक ॥

पाँवों में घुँघरू बाँधे, करते नीलवर्ण के गुणगान,
करूँ उसका गुणगान, आराधन, करूँ अमृत का पान।

रंगनाथ के अनन्त गुणों की महिमा गाते-गाते,
अमित पाऊँ नेत्रानन्द, उसका श्रृंगार निहारते।

इन्दिरा पति श्री पुरन्दर विठ्ठल
की करूँ भक्ति सुखद अति विमल ॥

इस तरह मनःपूर्वक हरिदास - सेवा को स्वीकार करनेवाले पुरन्दरदास जी को अन्य हरिदासों के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। हरिदासों द्वारा उपयोग में लाई जानेवाली हर वस्तु उन्हें मुक्ति का साधन लगती थी। अपने इस पूज्यभाव को उन्होंने एक उगाभोग में यों चित्रित किया है।

जिसने तानूपरा बजाया वह भवसागर पार गया।
हाथ से झांझ बजानेवाला सुरगण के साथ जा मिला।
घुँघरू बाँधे जिसने दुष्टों की छाती पर मूँग दली उसने।
नाम-महिमा जिसने गायी उसने हरिमूर्ति की छटा पाई।
पुरन्दर विठल को जिसने देखा, उसने वैकुंठ धाम को पेखा ॥

हरिदासों के तानपूरा, झाँझ और घुँघरुओं की सार्थकता का उपर्युक्त पद में पुरन्दरदास ने अर्थपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है। मधुकरी वृत्ति की गरिमा व माधुरी का गुणगान करते वे नहीं थकते। इस उगाभोग (पद) में पुरन्दरदास ने स्वानुभव से यह बताया है कि हरिदासों की एक-एक साधना किस प्रकार सिद्धिदायक है। इस कारण से यह पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

हरिदास सेवा के आनन्द को छकने के बाद पुरन्दरदास जी को हरिदास बहुत ही भाने लगे। और तो और उनके लिए वे कल्पवृक्ष के समान हैं। वे हरिदासों को विस्मय से देखते हैं और तरह-तरह से उनकी श्रेष्ठता व महिमा गाते हैं, "अच्युत के इन दासों को देखो, भूलोक के कल्पवृक्षों को देखो! क्या क्षीर से मिले जल को पानी कभी कह सकते हैं? पानी से निकलनेवाला मोती भी पानी कहलायगा? पके मिट्टी के बर्तन से भी कच्ची मिट्टी निकल सकती है? वीर भक्तों को भी कभी मामूली मानव कह सकते हैं!' इसीसे दास जी संतृप्त नहीं हैं। 'परब्रह्म विष्णु, परब्रह्म वैष्णव' आदि उक्तियों द्वारा हरि और हरिदास के बीच के निकट सम्बन्ध को स्पष्ट करते हैं। वे समझा कर कहते हैं, 'दास बनने के लिए कितने जन्मों का सुकृत चाहिए।' गुरु का अनुग्रह और हरिदासों की संगति के लिए कातर रहते थे। उनके उपलब्ध होने पर प्राप्त अमितानन्द में तल्लीन

होकर, उल्लसित मन से उन्होंने गीत गाये हैं।

वर गुरु के उपदेश ने तार दिया मुझे, अब और क्या चाहिए।।टेक।।
हरिदासों की संगति मिली मुझे, अब और क्या चाहिए।।उपटेक।।

माया संसार का ममत्व मिट गया, अब और क्या चाहिए।
तोयजाक्ष का नाम रसना में बस गया, अब और क्या चाहिए।।

++++++++++++++++

कितना आनंद विभोर हूँ मैं, यह कैसे बताऊँ, और क्या चाहिए।
उस नंद नंदन की महिमा गाते हुए मुझे, और क्या चाहिए।।

उनके चंचल चित्त को यहाँ दृढ होते हम देख सकते हैं। सांसारिक मोहमाया और अहंकार के आतंक मिटने की बात वे ही कह सकते हैं जो कृतार्थ हुए हैं। अब उनकी जिव्हा पर हरिनाम की लीला ही लीला है। वह उनकी अक्षय निधि है। इससे आत्मीयता बरतकर भगवान से यह कहते भी नहीं हिचकते, 'अब तुम्हारी क्या परवाह, मैं तुम्हारा ऋणी क्यों बना रहूँ? मुझे तुम्हारे नाम का बल जो प्राप्त हुआ है। वही मेरे लिए काफी है।'

सुनार श्रीनिवासनायक अपनी सतत साधना से चैतन्यमय अपरोक्ष ज्ञान को प्राप्त कर, परम पुनीत हो पुरन्दरदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। आत्मचिन्तन और आत्मशोधन से, तपे सोने की भांति परिशुद्ध बने। नारदांशसंभूत पुरन्दरदासजी ने अपनी भक्तिपरवशता के कारण आध्यात्मिक जगत् में अत्युन्नत स्थान प्राप्त किया। उनके हृदयानुभव से निसृत एक-एक उक्ति सहज ही साहित्य का अनर्घ रत्न सिद्ध हुई।

3. पुरन्दरदास की रचनाओं का अनुशीलन

(i) आध्यात्मिक गरिमा

पुरन्दरदास की रचनाओं में छिपी आध्यात्मिक गरिमा को हम दो स्तरों में देख सकते हैं। पहले तो उनकी स्वमतनिष्ठा, श्रीमध्वाचार्य के प्रति उनकी असाधारण भक्ति, अवतारत्रय की महिमा, हरिनाम तथा हरिदासों के प्रति उनका गौरव आदि विचार आते हैं जिन्हें सांप्रदायिक व सीमित कह सकते हैं। दूसरा स्तर है उनके अपरोक्ष ज्ञानी बनकर तरह-तरह से भगवान की उपासना कर आत्मसंतृप्ति प्राप्त करने का भव्यचित्रण।

श्री व्यासराय जी ने मध्वमत के प्रधान प्रमेयों को एक स्थान पर एकत्रित करके यों प्रकट किया है।

श्रीमन्मध्वमते हरि: परतर: सत्यं जगत् तत्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा: नीचोच्च भावं गता:
मुक्ति नैंजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनम्
ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैक वेद्यो हरि:

हरि सर्वोत्तम हैं। जगत् सत्य है और पंचभेद भी सत्य हैं। जीवगण हरि के अनुचर हैं, वे नित्य तारतम्यवद्ध हैं। स्वरूप-स्वानुभव ही मुक्ति है। उसके लिए पवित्र भक्ति ही साधन है; प्रत्यक्ष, अनुमानं, आगम प्रमाण हैं। श्रीहरि मात्र वेदों से वेद्य हैं - श्रीमध्वाचार्य जी से प्रतिपादित इन प्रमुख सिद्धान्तों को व्यक्त करनेवाली रचना को 'नवरत्नमालिका' कह्ते हैं। इस संदर्भ में पुरन्दरदास की कई कृतियों के परिशीलन से न केवल उनकी स्वमतनिष्ठा परिलक्षित होती है बल्कि यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने प्रत्येक सिद्धांत को सरल कन्नड भापा में किस प्रकार निवद्ध किया है।

एक पद में तो दास जी ने अपने गुरु की बातें ज्यों की त्यों उतारी हैं, उनका पूर्ण अनुकरण किया है।

सत्य है यह जग, सत्य पंच भेद भी, श्री गोविंद ही नित्य है रे॥ टेक॥
कृष्ण की महिमा जान रे, अन्यत्र है कहाँ, उसे सर्वोत्तम बताओ रे॥ उपटेक॥
जान भेद यह जीव ईश बिच, सब कहीं जीव जीव मधि भेद रे,
जीव जड बिच, जड जड मधि, जीव जड प्रभु बीच रे॥

आदि पुरन्दर विठ्ठल अनंत गुणों से हैं माँ लक्ष्मी से भी आगे,
पवनसुत हृत्कमल - वासी के, जग में न सम हैं कोई न आगे॥

इस पद के कुल सात चरणों में द्वैत सिद्धांत के सारे प्रमेयों की शास्त्रीय परिभाषा सूत्ररूप में निबद्ध है। हर एक प्रमेय को अलग-अलग से लेकर विशद रूप से उसका वर्णन करते समय प्रसाद गुण से ओतप्रोत उनकी वाणी की रम्यता अन्यत्र दुर्लभ है। श्री हरि और उनके परिवार के बीच के सम्बन्ध को उन्होंने अपने एक उगाभोग में यों व्यक्त किया है।

श्री लक्ष्मीं जी का तो है नित्य पतिभाव,
ब्रह्मा और वासुदेव का है नित्य पुत्रभाव,
गरुड जी, आदिशेष व रुद्र का नित्य पौत्रभाव है,
इन्द्र, कामदेव, आत्म, जीव का तो नित्य भृत्यभाव है,
यही पुरन्दर विठल का भाव है।

हर एक देवता के स्थानमान को वरीयता के क्रम से निरूपित न करके भगवान से उनके सम्बन्ध के अनुसार उन्हे अंकित करने की रीति कैसी स्पृहणीय है!

हरि के सार्वभौमत्व की घोषणा में भी पुरन्दरदास ने तरह-तरह के विधान अपनाये हैं। वे कभी शपथ लेते हैं, “विदित दैव सब विष्णु के परवर्ती रूप हैं; यह असत्य सिद्ध हुआ तो मैं साँप का फन पकडूँगा।’ कभी शास्त्रों का आधार देकर समर्थन करते हैं, ‘तभी निर्णय हो चुका है कि इन्दिरापति ही परमदैव हैं।’ कभी उपदेश देते हैं, ‘हमारे देवता, तुम्हारे देवता और उनके देवता मत कहो; एक ही देवता ब्रह्मा के पिता हैं।’ और कभी गजेन्द्र संरक्षण और भृगुमुनि द्वारा कथित हरिसार्वभौमत्व प्रसंग का वर्णन कर, ‘एको विष्णुः’ आदि श्रुतिवाक्यों को उद्धृत कर अपना निर्णय सुनाते हैं। अन्त में सभी विधिविधानों को किनारे करके गाने लगते हैं, ‘ऐसी मोहकता मैंने अन्य किसी देवता में नहीं, वह देखी केवल गोपीजनप्रिय गोपाल में है।’ आगे एक-एक चरण में हरि की अद्वितीयता का ऐसा मोहक चित्रण प्रस्तुत करते हैं जिसे देखते ही बनता है।

गोपीजनप्रिय गोपाल के सिवा यह चारुता अनोखी,
अन्यत्र और किसी भी देवता में हमने नहीं देखी॥

राजा भी ऐसा कि धरणी देवी का ही रमण,
ऐश्वर्य में देखो तो इसे श्रीलक्ष्मी ने किया है वरण,
बडप्पन में तो सरसिजोद्भव ही है,
आचार्यत्व में तो सारे जग का आदिगुरु है।

पवित्रता में अमरगंगा का ही जनक है,

देवत्व में सारे दिविजों का नायक है,
कमनीयता में तो लोकमोहक है,
धैर्य-साहस में असुरान्तक ही है।

गगनसंचारी गरुडदेव ही तुरग है,
सारे संसार के धारक शेष ही पर्यंक है,
ऐसा भाग्य निगम गोचर पुरन्दर विठ्ठल का है,
अन्य देवताओं को, कहो, यह कहाँ से प्राप्त है ?

श्रीहरि के सकल गुणपरिपूर्ण होने का तत्व इस पद में पुरन्दरदास जी द्वारा बहुत ही मनोज्ञ रीति से प्रतिपादित हुआ है। श्रीहरि का सौन्दर्य जितना अनुपम है उनका प्रभुत्व, ऐश्वर्य, गुरुत्व, पावनत्व, देवत्व, लावण्य व दर्प भी उतने ही अद्वितीय हैं। उनका वाहन गरुड है तो पर्यंक आदिशेष। 'सकलाम्नायैकवेद्यो हरि:' -इस उक्ति के अनुसार वे निगमगोचर हैं। सकल गोपीजनवल्लभ होना ही श्रीहरि के सौंदर्य का प्रबल साक्षी है। 'और किसी देवता के भाग्य में यह बदा नहीं है' कहकर एक ही पंक्ति में श्रीहरि पर अपनी अचल निष्ठा व्यक्त करते हैं। अन्य दैवों की निंदा किये बिना, अन्य मतों की अवहेला किये बिना हरि के सार्वभौमत्व को स्थापित करने का यह सुकुमार मार्ग कितना प्रभावशाली है!

भगवान में अनन्य भक्ति रखनेवाले इस हरिदास ने उनके नाम की महिमा का गरिमामय वर्णन प्रस्तुत किया है। 'अब तुम्हारी क्या परवाह ? मैं तुम्हारा ऋणी क्यों बना रहूँ ? मुझे तुम्हारे नाम का बल जो प्राप्त हो चुका है। वही मेरे लिए पर्याप्त है।' -ऐसा कहने से भी वे नहीं हिचकते! सबको विश्वास दिलाते हैं, 'कलियुग में हरिनाम के जपने से सब पूर्वज तर जाते हैं।' वे बार बार दुहराते हैं कि स्नान, मौन, ध्यान, पूजाविधान, जप-तप, उपदेश आदि विविध आचरणों से अनभिज्ञ लोग भी नामस्मरण से पुनीत हो सकते हैं। भक्तों का मुँह मीठा करनेवाली पुरन्दरविठ्ठल नाम रूपी खाँड के अनुपम लक्षणों को समझाते हैं। इस अपूर्व माल को बैल और सवारी पर लादकर बेच नहीं सकते। बोरों में भर नहीं सकते। निस्संदेह अमित लाभ दिलानेवाला माल है यह। इसके व्यवसाय में न हानि है न घाटा। न ही इसका मूल्य सिक्कों में लग सकता है। खाँड वह जिसे चींटियाँ नहीं लग सकतीं! गाँव - गाँव में प्रसिद्ध इस माल को लादके हाट - बाजार में बेचा नहीं जा सकता! इसका स्वाद चखनेवाला ही जानता है। दासजी का कहना है कि यह भाग्य भक्तजन को सदा सर्वदा सुलभ है। पुरन्दरदास जी की यह रूपकनिर्माण - शक्ति आश्चर्यजनक है, आनन्ददायक है। भगवन्नाम का उद्गम, विकास और सुफलों का चित्रण बहुत ही सरस है। उसे धरा पर रोपनेवाले नारद थे, बालक ध्रुव से वह अंकुरित हुआ। और एक बालक प्रह्लाद से वह बिरवा बना। सन्तश्रेष्ठ राजा रुक्मांगद से वह सहज ही पल्लवित हुआ। वयोवृद्ध भीष्म की भक्ति की देखरेख में वह पुष्पित हुआ। बीज से

वृक्षरूप में विकसित होकर पुष्पित होने तक का चरण यहाँ समाप्त हुआ, तो यहाँ से आगे दूसरा चरण प्रारंभ होता है। फूल को कच्चे फल में परिवर्तित करने का उत्तरदायित्व द्रौपदी देवी पर आ पड़ा। बलवान प्राणी होने पर भी संकट के समय भगवन्नाम स्मरण से विपत्ति से बचनेवाले गजेन्द्र की पुकार से वह जिस प्रकार अधपका बना वह ध्यान देने योग्य है। भक्त शिरोमणि शुकमुनि के सान्निध्य व स्पर्श से उसका परिपक्व हो जाना बहुत समीचीन रहा। इस प्रकार हर एक के सहयोग से हरिनामरूपी फल क्रमश: पक्व होता गया। उसे चखने का सौभाग्य व्रतभ्रष्ट अजामिल को प्राप्त हुआ, यह सुनकर विस्मित हुए बिना कोई रह नहीं सकता! हो सकता है यहाँ यह तत्व निहित हो कि पवित्रात्माओं के तप:फल से पापी भी पुनीत हो जाते हैं। 'हरि के भजन से उम्र का कोई सम्बन्ध नहीं' कहते हुए पुरन्दरदास जी ने हरिनाम की महिमा का हार्दिक वर्णन प्रस्तुत किया है। बालक ध्रुव और युवा प्रह्लाद के पिताओं को जिस भगवान ने दर्शनलाभ नहीं दिया उन्होंने इन बच्चों पर कृपा की। पुरन्दरदास जी इन घटनाओं के उदाहरण से अपने मत का समर्थन करते हैं। 'एक ही नाम में विलीन हैं आनन्द से घोष करनेवाले अखिल वेद', 'हरिनामरूपी तोता उड़ रहा है जग में, परम भागवतजन जाल बिछा रहे हैं,' 'रामनामरूपी खीर में कृष्णनाम का शक्कर और विठ्ठलनाम का घी मिलाकर उसका स्वाद लीजिए' आदि एक के बाद एक निकले पदों की माला को देखकर पता चलता है कि किस प्रकार पुरन्दरदास के अन्तरंग में हरिनाम ने घर कर लिया था। वे अच्छी तरह से जानते थे कि हरि के मन जीतने और वैकुण्ठ में जा बसने के लिए नामस्मरण ही एकमात्र कुंजी है। वे पूछते हैं, 'मैं टेढ़ा हुआ तो क्या हुआ, विठ्ठल? तुम्हारा नाम तो टेढ़ा नहीं?' 'मैं तो तुम्हारे नामभण्डार को लूटनेवाला चोर हूँ', कहकर अन्त में अपने को अपराधी ठहराने के बहाने श्रीहरि की शरण में पहुँच जाने का यह क्रम नित्यनूतन है।

तुम्हारे नाम भण्डार का हूँ मैं चोर,
मुझे बांध लो डाल भक्ति की जंजीर,
हे देव! अपने दासों के हवाले कर,
मुझे दागो, नाम-मुद्रिका खूब तपा कर,
अपने वैकुण्ठ दुर्ग में उभारो,
हे पुरन्दरविठ्ठल! मुझे बंदी बनाकर तारो।

और एक उगाभोग में उन्होंने इस भाव का कि पाप-पहाड में कृष्णनाम की चिनगारी लगने पर वह किस प्रकार भस्म हो जाता है, बहुत ही हार्दिक चित्रण यों प्रस्तुत किया है।

चारों तरफ से जब पहाड जैसे दुरित आवृत्त था,
श्यामनाम-ज्वाला से उसके भस्म होने की सुनाऊँ कथा,

अरे रे दुरित, जा, पीछे मुड़कर न देख,
अरे रे दुरित, जा, पीछे मुड़कर न देख,
तुम उसकी नजर में पड़ गये तो दण्ड मिलेगा,
हमारा पुंडरीकाक्ष पुरन्दर विट्ठल चुप न रहेगा,
फिर से दिखाई पड़ो तो तुम्हारा सिर ही कट जायेगा।

इस उगाभोग में पाप को सम्बोधित करने का पुरन्दरदास जी का ढंग ध्यान देने योग्य है। विषय एक ही है, पर अभिव्यक्त निरूपण विशिष्ट है। भगवान और उनके नाम को जिस प्रकार अविभाज्य समझते थे हरिदासों को भी हरि के समान पूज्यभाव से देखते थे। 'हरि सर्वोत्तम, वायु जीवोत्तम' तत्व में निष्ठा रखनेवाले पुरन्दरदास को श्रीहरि के सेवकों में अत्यन्त अग्रणी हनुमान में अमित भक्ति थी। 'भगवान हनुमान! वैराग्य का वर माँग कर आपने सेवकभाव की चरमसीमा को पार कर लिया' कहकर कर जोडे हनुमान की अव्याज भक्ति के सामने नतमस्तक होते हैं। हनुमान जी से संपन्न हर कार्य साहसमय है। समुद्रलंघन और संजीविनी पर्वतोत्पाटन उनके शक्ति-प्रदर्शन के भव्य निदर्शन हैं। इन अपूर्व कार्यों की सिद्धि के उपलक्ष्य में वे अपने स्वामी से चाहे जो माँग सकते थे। पर उन्होंने भगवान से उनकी सेवा माँगी और कुछ नहीं। इसीसे दास जी हनुमान की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। उनको विश्वास था कि मुख्यरूप से प्रतिफल की आशा किये बिना परमात्मा की सेवा करना ही सर्वोत्तम भक्ति है। हरिदासों की तो पूँजी हरिभक्ति ही थी और कुछ नहीं। ऐसे महात्माओं की निंदा सुनकर पुरन्दरदास जी का मन बहुत ही दुखी हुआ होगा। क्योंकि उन्होंने सावधान किया है, 'क्या हरिदासों को भी रंक कह सकते हैं? और हरिद्रोहियों को कहीं धनी कहते हैं? हरि की हरिदासों पर श्रीलक्ष्मी से भी अधिक करुणादृष्टि होती है। फिर, पुरन्दर विठ्ठल के सेवक मानापमान की परवाह क्यों करते हैं! उनकी शक्ति की असदृशता का समर्थन इस प्रकार करते हैं।

मारी* के हाथ पानी भरवा सकते हैं,
मसणी** से झाड़ू लगवा सकते हैं,
मृत्युदेवता से धान कुटवा सकते हैं,
यमदूतों से चौपाल पर पहरा दिला सकते हैं,
पुरन्दरविठ्ठल के दास, इस जग में, चाहे जो करा सकते हैं।

'लक्ष्मी देवी माता हैं, तो पिताश्री हैं विठ्ठलराय; ब्रह्म देव ज्ञाती हैं, वायुसूनु रक्षक, देवगण सहायक और माया है इनके घर की चेरी,' ऐसी स्थिति में पुरन्दरदास जी का कहना है कि इन्हें किसकी परवाह? इसीलिए तो हरिदास भगवान की शरण लेते हैं, 'श्री हरि! यदि तुम रूठ जाओ तो और कोई प्रसन्न हो या नहीं, हमें क्या लाभ? जब

---

* एक क्षुद्रदेवता ** स्मशान की अधिदेवता

तुम प्रसन्न हो तो अन्यों की अप्रसन्नता हमारा क्या बिगाड सकती है?' हरिदासों की महिमा से अवगत पुरन्दरदास जी द्वारा अपनी भगवत्सेवा पर प्रणीत कविता पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि उनकी सेवादीक्षा कितनी उज्ज्वल है।

मालिक एक कदम आगे जावे तो पलक-पावडा बिछाऊँ,
धीरे से आगे बढ़े तो उसके हाथ की छड़ी बन जाऊँ,
मालिक जबजब पान चबावे तबतब तमोली मैं बन जाऊँ,
पीछे-पीछे फिरूँ पीकदान लेकर, साथ-साथ मैं धाऊँ,
मालिक बिराजे राजसभा में, मैं दिखाऊँ दर्पण,
छत्रचामर ले संग हो लूँ, करूँ प्राणों का समर्पण,
स्वामी पुरन्दर विठ्ठलराय के मात्र नख एक,
हेतु सिर काटके रख दूँ, यही अपनी टेक।

सेवा के इस विवरण से हरिदास - दीक्षा में पुरन्दरदास की निष्ठा प्रकट होती है। 'सानुराग सेवा करनेवाली' लक्ष्मी के आदर्श और सेवाभाव के प्रशंसक पुरन्दरदास जी अपने मालिक की खडाऊ ढोने से लेकर अपना सिर समर्पित करने तक की सेवा करने के लिए तत्पर हैं, मानो लक्ष्मी के आदर्श का पालन कर रहे हों।

हरि की सार्वभौमता, हरिनाम की महत्ता व हरिदासों के सेवातत्व का तरह-तरह से वर्णन करनेवाले पुरन्दरदास जी का अपने आचार्यों के प्रति भक्तिभाव असीम है। श्री मध्वाचार्य जी की साधना की प्रमुख उपलब्धियों को एक ही सुळादि में समेटने का यत्न दास जी ने किया है।

एक आचार्य ने कहा भगवान है ही नाहीं,
एक आचार्य ने कहा गुण कैसे भगवान माहीं,
एक आचार्य ने कहा भगवान निर्गुण निरवयव निराकार,
'अहं ब्रह्मास्मि', 'मैं ही हूँ भगवान' कहा उन्होंने आगे बढ़कर,
एक आचार्य वेदों का मर्म जानकर भी अनजान हैं,
अकेले श्री पुरन्दर विठ्ठलराय ही एकमात्र आराध्य दैव हैं,
यह सत्य बतानेवाले मध्वाचार्य ही एकमात्र आचार्य हैं।

अपने आचार्यों की प्रशंसा करते समय उनसे पूर्व दर्शन-क्षेत्र में उदित नास्तिकता से लेकर आस्तिकता तक की भूमिका बाँधने का पुरन्दरदास का प्रयास प्रशंसनीय है। प्रधानतया अद्वैत, विशिष्टाद्वैत प्रक्रियाओं से भिन्न द्वैत सिद्धान्त की स्थापना का श्रेय श्रीमध्वाचार्य जी को है। 'हरि को परमदेवता माननेवाला ज्ञान ही ज्ञान है, हरि के पादारविन्दों में विलीन होनेवाली मुक्ति ही मुक्ति है; हरि रहित ज्ञान मिथ्या ज्ञान है, हरि रहित भक्ति

तामस भक्ति है; पुरन्दरविठ्ठल को दिखानेवाले श्री मध्वाचार्य जी ही त्रिलोकों के गुरु हैं' - यों मध्वाचार्य के उपदेशों को संग्रहीत करके, उन्हें तब तक विरचित एक्कीस भाष्यों के दोषदर्शन कराके अपने सिद्धान्त को प्रतिस्थापित करनेवाले महामहिम-ठहराया है। प्रसिद्ध है कि श्री मध्वाचार्य भगवान के अंशपुरुष हैं। अत: उनकी स्तुति करते समय अवतारत्रय हनुम, भीम और मध्व की अनुक्रम से स्तुति करने की परंपरा है। 'हनुमान मेरे माँ-बाप हैं, भीम मेरे बन्धु-बांधव तथा आनंदतीर्थ मेरी गति और गोत्र हैं,' इस भावभीनी प्रशंसा के साथ-साथ हर एक की महत्साधना का भी परिचय प्रस्तुत किया है।

द्वैत सिद्धान्त के प्रमेयों में सब से आधारभूत प्रमेय है परमात्मा और जीवात्मा के सम्बन्ध का। दास जी ने उसे अपने एक पद में बहुत सरलता से, किन्तु गहनता से यों गाया है, 'दोनों एक न होंगे, श्रीहरि! एक न होंगे, कभी एक नही होंगे।' 'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते, तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्यनन्नन्यो अभिचाकशीति' - इस उपनिषद्वाक्य (मुण्डकोपनिषद् मुं - 3, श्लो - 1) को अपने कथन के प्रमाण स्वरूप बहुत ही सहज रीति से यों प्रस्तुत किया है, 'एक वृक्ष के एक घोंसले में दो पक्षी रहा करते हैं जिनमें से एक फल खाता है, तो दूसरा नहीं खाता।' भगवान के अनुशासन में संपन्न प्रकृति के सारे व्यापारों के नित्यक्रम का निरूपण भी बहुत ही सरस बन पड़ा है। उनका कहना है, 'पल भर के लिए न चन्द्रमा रुक सकता है, न ही इन्द्रादि को बैठने के लिए समय है; न क्षणभर के लिए सूर्यादि खड़े होकर खुजलाने के लिए विरम सकते हैं; पुरन्दरविठ्ठलराय बहुत ही न्यायनिष्ठुर राजा हैं, भाई!' सूर्य, चन्द्र और इन्द्रादि देवताओं द्वारा कर्म परिपालन के सातत्य को जानपद उक्ति 'खड़े होकर खुजलाने के लिए भी विराम नहीं' के जरिये अभिव्यक्त करना मनोहर है। यहाँ प्रधान है श्री हरि का अनुशासन - प्रेम! भगवान की दया जितनी प्रिय है उनका भय भी उतना ही प्रभावकारी है। इसी सुळादि के अन्य चरण में पुरन्दरदास जी स्पष्ट करते हैं कि सभी देवता जिस प्रकार श्रीहरि के अधीन हैं, हमारे आसपास की सृष्टि भी उसी प्रकार उनके अनुशासन का पालन करती है। पृथ्वी डरती है, गिरि कंपायमान हैं; सरिता-समुद्र भय के मारे गरम हो रहे हैं; मरुत चल रहा है, पावक डर से जल रहा है और पेड़पौधे फल दे रहे हैं, हे पुरन्दर विठ्ठल! अपने राज्य में कैसा कानून बनाया है तुमने!' प्रशंसा की ये उक्तियाँ कठोपनिषद् के इन आर्ष वाक्यों की याद दिलाये बिना नहीं रहतीं - 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य:, भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचम:।' पुरन्दरदास जी ने अपनी रचनाओं में यथा आवश्यकता इस तरह के अमूल्य भावों का सुन्दर नियोजन किया है। अब तक निरूपित स्वमत सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में पुरन्दरदास की रचनाओं का मूल्यांकन करने मात्र से उनके प्रति न्याय नहीं होगा। हमें इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि अपरोक्ष ज्ञानी होने के नाते प्राप्त भगवदनुभूति को उन्होंने किस प्रकार चित्रित किया है।

परमात्मा के लीला - विशेषों से अवगत वे जब उनकी अन्तरयामिता का परिचय पाकर उससे अभिभूत हो उस विराटमूर्ति के सामने नतमस्तक होते हैं तब उनकी कलम रुकना नहीं जानती। उदाहरण के लिए यह भव्य चित्र देखिए।

तुम्हारे ब्रह्म स्वरूप को नमो नमो,
तुम्हारे रुद्र स्वरूप को नमो नमो,
तुम्हारे चन्द्रमा स्वरूप को नमो नमो,
तुम्हारे स्थावर स्वरूप को नमो नमो,
तुम्हारे जंगम स्वरूप को नमो नमो,

हे पुरन्दर विठ्ठल, तुम्हारे विश्वरूप को नमो नमो।

इसी शैली में आगे बढ़कर पुरन्दरदास जी ने एक सुळादि में अपने दिव्यानुभव का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। 'ब्रह्माण्ड ही मण्डप है, ज्योतिश्चक्र ही दीपक है; महामेरु सिंहासन है, महालक्ष्मी आभूषण और मन्दार - पारिजात पुष्पमाला है और पुरन्दरविठ्ठल के लिए तो अमृत का ही भोग है,' इन उक्तियों की गहनता व व्याप्ति को शब्दों में मापना कठिनसाध्य है। इस प्रकार अपने आध्यात्मिक अनुभव के विकास के साथ प्राप्त आनन्दमय भगवान के दिव्य - दर्शन का वर्णन उन्होंने अत्यंत तन्मयता के साथ निरूपित किया है।

वे पाद आनन्ददायक, वे नख आनन्ददायक,
वह जानु आनन्ददायक, वे जाँघें आनन्ददायक,
वह ऊरु आनन्ददायक, वह कटि आनन्ददायक,
वह उर आनन्ददायक, वे भुजायें आनन्ददायक,
वह कंठ, वह मुख, आनन्ददायक रे,
वे शिरोरुह आनन्ददायक रे,
हे पुरन्दरविठ्ठल, तुम्हारा अलौकिक रूप,
है अमित आनन्ददायक, मनमोहक, अति अनूप।।

पुरन्दरदास जी भगवान के भव्यरूप के आनन्द का अनुभव आप अकेले नहीं करते। बल्कि इस सुळादि में एक के बाद एक पदों की ऐसी पुष्पवृष्टि की है कि श्रोता भी आनन्दसागर में डूब जाता है। भगवान की परिपूर्णता का चित्रण करते वक्त भी उनकी कल्पना उत्तुंग शिखर पर चढ़ जाती है। 'श्रोत्रनेत्र परिपूर्ण, घ्राणेन्द्रिय परिपूर्ण, ज्ञानेन्द्रिय परिपूर्ण, कर्मेन्द्रिय परिपूर्ण' कहकर परमात्मा के प्रत्येक अवयव के स्वयं परिपूर्ण होने का विशिष्ट लक्षण दर्शाते हैं।

पुरन्दरदास जी अपनी आध्यात्मिक साधना के जैसे - जैसे एक - एक सोपान पार करते गये वैसे - वैसे उनकी दृष्टि अन्तर्मुखी होती गई। क्योंकि प्रारंभ में 'आँखों से देखो श्री

हरि को, अन्तर्चक्षुओं में निहारो त्रिलोक के स्वामी को' कहनेवाले पुरन्दरदास जी बाद में पट्चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्र) को पार कर सहस्रार कमल में विराजमान नारायण के दर्शन लाभ पाकर सुखी बनने का उपदेश देते हैं। वे सावधान करते हैं, 'गुरु की कृपा से जब तक भीतर के भगवान को नहीं समझोगे तब तक महानन्द की उपलब्धि सुलभ नहीं है।' वे महानन्द की महिमा का विशद व अर्थपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करते हैं। उनकी राय में 'यह तब तक संभव नहीं है जब तक भीतर बाहर एक न हो जाय, अपने ज्ञान के भ्रम का निरसन न हो जाय, अन्दर की ज्योति आलोकित न हो जाय और पुरन्दरविठ्ठल की कृपादृष्टि न छा जाय।' योगानुसंधान से जब सामान्य मानव भी देहपुष्टि पा सकता है, तो पुरन्दरदास जैसे भक्त शिरोमणि उसके द्वारा भगवत्-साक्षात्कार क्यों नहीं कर सकते? उपर्युक्त पंक्तियाँ इसके लिए साक्षी स्वरूप हैं। 'सारे साधनों के मूल में भक्ति साधन ही है; क्या और कोई साधन उसका स्थान ले सकता है?' कहकर अनन्य भक्ति पर अचल विश्वास रखनेवाले श्री पुरन्दरदास जी की यह आध्यात्मिक साधना सचमुच अनुपम है।

116080
18/11/84

(ii) साहित्य सौंदर्य

पुरन्दरदास की रचनाओं की वस्तु पारमार्थिक है, फिर भी उनके अपरोक्षानुभव के तादात्म्य से उनकी कृतियों को श्रेष्ठ भक्ति साहित्य का गौरव प्राप्त हुआ है। भक्त और भगवान के बीच के सम्बन्ध को गाते-गाते उनकी भक्ति धारा सहस्त्र शाखाओं में फूट पड़ी है। श्रीमद्भागवत में उक्त शास्त्रीय पद्धति के अनुसार इस भक्ति को श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन आदि प्रकारों में विभाजित और विश्लेषित कर सकते हैं। अपनी एक सुळादि में उन्होंने नवविधा भक्ति के स्वरूप की सुदीर्घ चर्चा की है। 'श्रीहरि की नवधा भक्ति को जाननेवाला धीर फिर से जन्म लेकर संसार में नहीं आयेगा, धूर्त और दुष्कर्मियों की संगति नहीं करेगा; वह कभी कड़े शब्दों से बड़ेबूढ़ों का जी न दुखाएगा और न ही कभी उदार पुरन्दरविट्ठलराय की चरण - भक्ति का भद्दा प्रदर्शन करेगा,'इस प्रकार प्रथम चरण में ही भक्त के परिपक्व मन की स्थिति दर्शायी गई है। यह आशय कि भक्त कभी भक्ति का दिखावा नहीं करेगा, सचमुच प्रशंसनीय है। दूसरे चरण में श्रवण भक्ति का उल्लेख है। यह बताते हैं कि किस प्रकार भक्त श्रवण सुख से परवश होकर श्रीहरि का कृपापात्र बन जाता है - 'हरिकथा श्रवण में मन लगानेवाला विवेकी भक्त कभी समय व्यर्थ नहीं करता।' कीर्तन - भक्ति में तन्मय भक्त का चित्रण देखिए - 'उसके स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है, उसमें नरमी आ जाती है। वह सन्त जनों को स्वयं भगवान जानकर उनकी संगत में रह जाता है। हरिनाम संकीर्तन से सन्तुष्ट व्यक्ति का चुप बैठना सहज संभव नहीं। उसी स्थिति का यहाँ विशद वर्णन है। स्मरण भक्ति से कृतार्थ भक्त का मन निराला होता है। भागवत उसके लिए बहुत ही प्रिय है, वह 'हरिस्मरण से चित्त को मोड़नेवाले की निंदा करता है।' अपने हितैषियों को मुक्ति का रहस्य समझाता है, श्रीहरि के दिव्यदर्शन करने के लिए वह हृदय की आँखें खोलके प्रशंसा का पात्र बनता है। इस मार्मिक उक्ति में दास जी यह स्पष्ट करते हैं कि भगवन्नाम - स्मरण से वह अपनी अन्तर्दृष्टि को तीक्ष्ण व व्यापक बनाने में समर्थ होता है। 'पुरन्दर विट्ठलराय के चरणामृत रस का पान करनेवाला फिर से माँ का दूध नहीं पियेगा।' पादसेवन भक्ति से पुनीत भक्त के बारे में पुरन्दरदास का यह मत अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। उसके पुनर्जन्म नहीं होने के भाव को दासजी ने बहुत ही मार्मिकता से व्यक्त किया है। अर्चना भक्ति में प्रवीण भक्त 'श्रीहरि के चरणों में देह और इन्द्रियों को समर्पित करके' 'हरिपद में

अपने लिए स्थान' सुरक्षित कर लेगा। यहाँ भी देखा जा सकता है कि यह धारणा कितनी सही है। पुरन्दरदास 'अष्टांग को पारकर हरि की वंदनाभक्ति करनेवाले सेवकों को ऐहिक संपत्ति को ठुकराकर पुरन्दर विठ्ठलराय पर अचल विश्वास रखनेवाले पागल' ठहराते हैं। हरिदास-भक्ति की माधुरी से परिचित भक्त जीवनमुक्त का पद पाकर प्रशंसा का भाजन बनेगा। वह 'मैं स्वयं ब्रह्म हूँ' कहनेवाले से जितना चिढ़ता है, हरिदासों को देखते ही सदैव उनकी सेवा के लिए उतना ही तत्पर रहता है। उनके प्रति इनके मन में अतीव ममता होती है। उसके लिए परमात्मा का पादारविन्द कल्पवृक्ष के समान है। उसी की छत्रछाया में भक्त जीवनयापन करता है। हरि के सख्य को पानेवाले पुण्यशाली के भाग्य की भी क्या कोई सीमा होती है? वह लिंगांगों को भस्म करनेवाला धीर है। नवधा भक्ति में 'आत्मनिवेदन भक्ति' सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। जैसा नाम से ही स्पष्ट है आत्मसमर्पण ही इसका मूलोद्देश्य है। इस अवस्था को पहुँचा भक्त पंचभौतिक शरीर से भी मुक्त हो जाता है। पुरन्दरदास जी ने 'अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश और हवा' कहकर एक-एक तत्व को नाम से स्पष्ट अंकित जो किया है वह हृदयस्पर्शी है। ऐसे भक्त के आनन्द की सीमा नहीं होती। इस प्रकार हर एक तरह की भक्ति के मर्म का आद्यन्त वर्णन प्रस्तुत कर अन्तिम चरण में 'हरिभक्ति ही मुक्तिपथ का मूलतत्व है' की घोषणा के द्वारा मध्वमत में आचार्यों से स्वीकृत माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ भक्ति की महिमा को पुरन्दरदास जी ने निबद्ध किया है। नवधा भक्ति का पुरन्दरदास ने जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है वह अमूल्य है। इन सभी भक्तियों को सूत्ररूप से संचालित करनेवाले भक्त और भगवान के बीच के संबंध में भक्त के मनोधर्म पर ध्यान देने से उसमें निहित मार्दवता से भक्ति की विविधता अधिक मनोहर लगती है।

भगवान और भक्त के बन्धुत्व के आलोक में पुरन्दरदास की कृतियों का विश्लेषण करने से हम जान सकते हैं कि संदर्भ के अनुसार शान्त, दास्य, सख्य, मधुर व वात्सल्य नामक पंचविध भावों से उनका हृदय किस प्रकार स्पंदित होता रहा है। तब जाकर हमें इस दासश्रेष्ठ के अन्तरंग के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। पुरन्दरदास ने परमात्मा की महिमा की तरह-तरह से प्रशंसा की है। भगवान के प्रशान्त भाव से दासजी सुप्रसन्न हैं, उनके असदृश व्यापारों से प्रभावित हैं। 'नाभि से बच्चे को, उंगुष्ट से बच्ची को पानेवाले कोई हैं? मनोहारिता में इन्हें मात करनेवाले अन्य देवता भी हैं? हे पुरन्दरविठ्ठल! तुम्हारी ही शरण है, शरण है' - इस तरह पुराणोक्त निदर्शन देकर भगवान की शरण जाते हैं। यहाँ परमात्मा के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति तथा त्रिविक्रमावतार में श्रीविष्णु के नख से आसमान का छेदन और उससे गंगोद्भव के प्रसंगों का उल्लेख है। यहाँ दासजी ने न केवल भगवान की अनुपम शक्ति का वर्णन किया है बल्कि उनके सौन्दर्य की ओर भी हमारे मन को आकृष्ट किया है। भगवान की यह मोहकता दूसरी दृष्टि से भी उन्हें अनुपम लगती है। तब उनकी वाक्चातुरी का क्या कहना! 'स्त्रियों पर पुरुष मुग्ध

हुआ करते हैं, क्या कभी पुरुष ने पुरुष को मोहित किया भी है?' इस प्रश्न के साथ वे हमें विस्मित करते हैं। फिर 'हे हरि, परम पुरुषोत्तम! ब्रह्मादि पुरुष तुम पर मुग्ध हैं। हे श्रीकान्त पुरन्दरविठ्ठल! संसार में तुम ही मोहन रूप हो' कहकर हमारे कुतूहल का शास्त्रोक्त समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।

'हे शौरी, कंसारि! तुम अणु के लिए अणु, घन के लिए घन हो और गुणत्रय के आवरण से परे हो। हे गुणनिधि पुरन्दरविठ्ठल, तुम्हारा पार पानेवाला कौन हो सकता है?' यह है वह उगाभोग जिसके द्वारा दासजी ने परमात्मा की सर्वव्यापकता की गाकर प्रशंसा की है। इससे तृप्त न होकर पुरन्दरदास ने सात चरणोंवाली एक सुळादि में इसी विषय को संपूर्ण रूप से व्यक्त किया है जो 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' नामक श्रुतिवाक्य की व्याख्या लगती है। निदर्शनार्थ एकाध चरण को यहाँ उदाहृत कर सकते हैं।

वह अणु बन सकेगा, महत् बन सकेगा,
अणु और महत् का मिलन बन सकेगा,
वह रूप बन सकेगा, अरूप बन सकेगा,
रूप - अरूप दोनों का मिलन बन सकेगा।
व्यक्त बन सकेगा, अव्यक्त बन सकेगा,
व्यक्त - अव्यक्त दोनों का मिलन बन सकेगा,
सगुण बन सकेगा, निर्गुण बन सकेगा,
सगुण - निर्गुण दोनों का सम्मिलन बन सकेगा।
वह अघटनाघटन - शक्त है, अचिंत्याद्भुत महिम है,
श्री पुरन्दरविठ्ठल राय तो स्वगतभेद - विवर्जित है॥

उपर्युक्त चरण में जहाँ परमात्मा का विशिष्ट गुण - स्वगतभेद विवर्जित - का विवरण प्रस्तुत है वहीं उनके सर्वांतर्यामित्व का भी रोचक वर्णन इसी सुळादि में अंकित है,

अंदर हरि है, बाहर हरि है, बाहर नहीं तो उसे देखो अंदर,
वह अंदर नहीं तो देखो बाहर, वह आवृत्त है अंदर - बाहर,
सारा जग विष्णुमय है, वह न हो ऐसी जगह कहाँ है,
वासुदेव पुरन्दर विठ्ठल सर्वांतर्यामी है, परिपूर्ण है।

इसी परमात्मा की 'अनन्त मूर्ति और अनन्त कीर्ति' की महिमा गाते - गाते दासजी ने किस - किस देवता में जगन्नियामक भगवान का कौन - कौनसा अंश विलीन होकर विराज रहा है, इसका भी गहन व शास्त्रसम्मत निरूपण किया है।

ब्रह्मा का श्रीरूप है श्रीरंगनाथ मूर्ति में, रुद्र की उग्रता नरसिंह स्वरूप में,
है इन्द्र का इन्द्रत्व उपेन्द्र के रूप में, चन्द्र की सौम्यता वामन स्वरूप में,
सूर्य का प्रकाश है नारायण रूप में, अग्नि का तेज परशुराम स्वरूप में,
सारे ब्रह्माण्ड की अनंत जीवकोटि के लिए काल - पुरुष विष्णु के रूप में,
मेरे लिए है परिपूर्ण - ब्रह्म स्वरूप, ब्रह्म के लिए है पुरंदरविठ्ठल के रूप में॥

अन्यान्य पद में पुरन्दरदास ने हरि के सर्वोत्तमत्व को प्रतिपादित करते हुए यों गाया है,

तुम ही विश्वतोमुख, तुम्ही विश्वतश्चक्षु हो,
तुम्हीं विश्वपाद, तुम्हीं विश्वतोबाहु हो,
तुम्हीं हो विश्वव्यापक, तुम्हीं विश्व उदर हो,
हे विष्णु! विश्वनाटक सूत्रधार भी तुम्हीं हो ॥

इसका एक - एक शब्द ऋग्वेद में उक्त निम्नांकित ऋक् की प्रतिध्वनि - सा लगता है।

विश्वतष्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वत:स्पात्
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैः
द्यावा भूमी जनयन्देव एक:।

—ऋ. मं. 10-81-3

आसपास के संसार के व्यापारों का हरिदासों ने यद्यपि शास्त्रोक्त रीति से वर्णन किया है तथापि इनके एक - एक अंश का, चूंकि उन्होंने अपने अपरोक्षानुभव द्वारा बार - बार अनुभूत किया है, मूल्य दुगुना हो गया है।

अपने एक उगाभोग में पुरन्दरदासजी ने श्रीविष्णु के द्वारा की गई समग्र विश्व की व्यवस्था का वर्णन यों किया है :

सारी पृथ्वी को खेत बना, सागर रूपी बीजल के सहारे,
शिव - ब्रह्मा रूपी दो बैल जोतकर, नर रूपी बीज को बोनेवाला रे,
कृषक इन्द्र है, पालक चन्द्र है,
निरानेवाला महाबली काल यम है।
वह सारी फसल साथ ले जावे तो यही है अर्थ,
पुरन्दर विट्ठल का कहना है, अकुलाना है व्यर्थ ॥

पूरा उगाभोग खेतीबाडी के विविध कार्यों को लेकर है। इस संसार में जन्म लेकर, फूल फलकर, बाद में मिट जानेवाले मानवकुल का उद्धार भगवान विविध साधनों से किस प्रकार करते हैं, इसका रम्य चित्र यहाँ निरूपित है। फसल को सींचने समग्र सागर को ही साधन सामग्री के रूप में उपयोग करने की शक्ति भगवान के सिवा और किसकी हो सकती है? समस्त धरती को जोतकर खेती करने का श्रेय भी केवल उन्हींको है। इस बृहत् कृपिकार्य में उनका हाथ बँटानेवाले हर एक देवता असामान्य हैं। हर एक देवता का कार्य उनके मनोधर्म के अनुरूप है। श्रीविष्णु के बाद ब्रह्मा तथा हर वरीयता की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। अत: उन्हें बैल के रूप में कल्पित करना उचित ही है। यद्यपि 'नररूपी बीज' की बात की कल्पना मानव तक अन्वित है, फिर भी इसे जीव मात्र के लिए विस्तृत कर सकें तो यह चित्र और भी भव्य बन पड़ेगा। अधीक्षक इन्द्र ही हल चलाने का उत्तरदायित्व उठा ले, तो उपज की क्या कमी? ओपधियों के राजा चन्द्र का सहकार भी प्राप्त हो तो क्या कहना! किन्तु 'जातस्य मरणं ध्रुवम्'-जिस वस्तु

का जन्म होता है उसका अन्त भी अनिवार्य है। यह कार्य यमधर्मराज का है। इस दृष्टि से वह निरानेवाला भी है, फसल को ले जानेवाला भी है। ये समस्त व्यापार श्रीहरि के आज्ञानुसार ही संपन्न होते हैं, इस तथ्य का पुरन्दरदासजी ने गहन वर्णन किया है। चूंकि सभी देवताओं में अवस्थित होकर उनसे ये सारे कार्य करानेवाले वे ही हैं, उनका नाम स्पष्ट रूप से उल्लिखित न होने पर भी उसे अध्याहार समझना है। अलग से यह बताने की जरूरत नहीं दिखती।

भगवान की महिमातिशय को देखकर मुग्ध होनेवाले भक्त की परवशता में उसका प्रशान्त भाव, प्रसन्न चित्त व चिन्तन शक्ति द्रष्टव्य हैं। यहाँ भक्त और भगवान के बीच का बन्धुत्व भले ही स्पष्ट रूप से नहीं झलके किन्तु यह अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि परमात्मा का सृष्टिवैचित्र्य और समष्टिस्वरूप को निहारकर हरिदास का मन हर्ष, विस्मय और भावावेश से पुलकित हो उठता है। अपनी निरन्तर तपस्साधना से जिस प्रकार ज्ञानी भगवान के रहस्य को समझने का यत्न करता है उसी प्रकार यहाँ भक्त अपने भक्तिभाव द्वारा भगवान की अनुरक्ति के पात्र बनने को प्रयत्नशील होता है।

हरिदास - दीक्षा में दीक्षित उनके आचरण में दास्यभाव ओतप्रोत नजर आता है। 'तुम्हारा दास बन गया हूँ, तुम्हारे उच्छिष्ट खानेवाले के प्रति उदासीन होने से क्या लोग परिहास नहीं करेंगे ? तुम्हारे चरणकमल को हृदय में धरूँगा, हे पुरन्दरविठ्ठल !'-इस उगाभोग के अंतिम चरण से पता चलता है कि उनका दास्यभाव कितना उत्कट था। अपनी व्याकुलता को उन्होंने भगवान से इस तरह प्रकट किया है,'ज्वाला में गिरा कीट हूँ मैं, हे अच्युत, मेरी रक्षा करो! हे अनन्त! मुझे बाहर निकालो! हे गोविन्द! हे हरि! मेरा उद्धार करो। हे पुरन्दरविठ्ठल! तुम करुणाकर हो, मुझे तारो।' 'मारनेवाले और तारनेवाले तुम्हीं हों। हे केशव! तुम्हीं कैवल्यदाता हो। रावणांतक स्वामी पुरन्दरविठ्ठल! तुम्हारा वैभव और किसी देवता का नहीं है' - कहकर उन्होंने अपना अचल विश्वास व्यक्त किया है। 'मनोवचन और कायकर्मों में तुम्हीं हो, तुम्हीं हो, हे पुरन्दरविठ्ठल' कहते वक्त हम देख सकते हैं उनके त्रिकरण किस प्रकार परमात्मा के लिए तरसते हैं। जब हरिभक्त बनने को ठान लिया तब भगवान की तथाकथित उपेक्षा की भी वे परवाह नहीं करते क्योंकि वे अपने आपको समझाते हैं, 'तुम्हारे भक्त कहलानेवालों को अभाव का सामना करना होगा, नित्य के अन्न, वस्त्र व वसति के लिए तरसना होगा, व्याधि से त्रस्त होने और अपने ही लोगों से दुत्कारे जाने के लिए भी तैयार रहना होगा।' इस तरह समाधानचित्त हो वे भगवान से अपना दुखदर्द निवेदित करते हैं। 'निंदक नियरे राखिये' पुरन्दरदासजी भी इसे मानते हैं। ऐसे निंदकों से उनके महदुपकार हुए हैं जिनका विलक्षण वर्णन उन्होंने प्रस्तुत किया है। 'छेड - छेड कर मुझे हरिनाम में स्थिर किया, परिहास कर करके मुझे कामनाओं से मुक्त किया, सता-सता कर कामक्रोध छुड़ाया, चुगलखोर ही मेरे भाईबन्धु हैं, पिशुणों से मैं तर गया हूँ, हरि।' 'रगड - रगड कर मुझे कैवल्य का पथ दिखाया, मुझे रंक बनाकर मेरा प्रायश्चित्त करा डाला, श्रीहरि का नगीना मानकर मेरी सुरक्षा की,

मुझे तुम अपने दासों का दास कहलाओ, मेरी भलाई करो, हे पुरन्दरविठ्ठल!' पुरन्दरदास जी की कृतियों में अधिकाधिक भाग दास्यभाव के निरूपण के लिए सुरक्षित है।

भक्त भगवान का आत्मीय होता है, अत: उनसे बहुत कुछ छूट लेता है; वह उनकी कसम खाने तक से नहीं हिचकता,'मुझे भी कसम है और तुम्हें भी कसम है। दोनों को भक्तों की कसम है।' इन दोनों के आपसी समझौते की रीति बहुत न्यारी है। वे एक दूसरे पर गर्व करते हैं, आपसी हित की रक्षा करते हैं। यह अन्योन्य सख्य भाव असीम है, अनन्त है।

पुरन्दरदासजी से रचित कई व्याजस्तुति के उलाहने के गीतों में सख्य भाव की इस आत्मीयता को देख सकते हैं। 'इनके सौन्दर्य का भी क्या कहना? हम तो श्रीहरि के नाम पर लट्टू हो गये' भगवान की खिल्ली उड़ाते हुए उनके एक - एक महत्व का मजाक उड़ाते हैं। 'देश - कोश का रहनेवाला भी कहीं जाकर क्षीरसागर में घर बनायेगा? बिछाने के लिए बिछौना हो, तो कोई शेषशायी होगा?' शेषशायी की प्रशंसा करने का यह भी कैसा व्यंग्यपूर्ण तरीका है! इसी तरह हरिदासों द्वारा श्री विष्णु के परिवार की भी खिल्ली उड़ाई गई है। कहने की जरूरत नहीं है कि यह भी सख्य भाव का ही एक रूप है। वे भगवान से विनोद करते हैं, 'मुझे कहते हुए डर लगता है, सुनकर गुस्सा न करना। तुम्हारे पारिवारिक जीवन को कुछ घटिया ही कहना होगा। संसार में इसकी जितनी कम चर्चा हो उतना ही बेहतर है, हे श्रीलोल, महामहिम स्वामी!' 'तुम्हारा बड़ा लड़का सिरफोड है और धरती पर पूज्य भी नहीं है। छोटा लड़का आतंककारी है। लक्ष्मी को तो पिशुणों का घर पसंद है और तुम्हारी पुत्रवधू जात - कुजात का विचार किये बिना हर किसी पर कृपा कर बैठती हैं।- यह भक्त का उलाहना है भगवान के प्रति। यह सच भी है। भगवान के ज्येष्ठ पुत्र ने एक सिर खो दिया है और विदित है कि उनकी पूजा नहीं होती। छोटा लड़का कामदेव हर किसी को सताता फिरता है। लक्ष्मीजी लोभियों पर ही रीझती हैं। ब्रह्माणी सरस्वती जो श्रीमन्नारायण की पुत्रवधू हैं ऊंचनीच की परवाह न कर अपना प्रसाद बाँटती हैं। इसी श्रृंखला को जारी रखते हुए दासजी कहते हैं कि श्रीहरि की पुत्री गंगा जी वक्रगामिनी हैं। श्रीहरि का साला क्षीरसागर में लक्ष्मी के साथ जन्म लेनेवाला चन्द्र निकला गुरुतल्पगामी। ब्रह्मा के मानसपुत्र नारद महाराज भगवान के पोते हैं और हैं अव्वल दर्जे के चुगलखोर। स्वयं नारायण कृष्णावतार में रुक्मिणी के अपहरण करनेवाले स्त्रीचोर निकले। दासजी इसका भी उलाहना देने नहीं भूलते, 'कन्यापहरण करके जार की उपाधि पाने पर भी तुम त्रिभुवनों के स्वामी कहलाये!' आगे खिल्ली उड़ाते हैं कि लक्ष्मीपति होने पर भी वामन बनकर बलिराजा के पास भिक्षा माँगने पहुँचे। दासजी आश्चर्यचकित हैं कि पक्षिवाहन के गुणगान करनेवाले लोग भी हैं। भगवान के परिवार की इन न्यूनताओं की ओर इशारा करते हुए हरिदासों ने निंदा के मिस उनकी स्तुति करने का जो चमत्कार दर्शाया है उसे भी भक्त और भगवान के बीच की मैत्री का ही संकेत मानना होगा। सख्य भाव को ही प्रधानतया व्यक्त करनेवाले

इस उगाभोग को देखिए। 'तुम्हारे जैसे स्वामी मेरे हैं, तुम्हारे कौन हैं? तुम्हारे जैसे पिताश्री मेरे हैं, तुम्हारे कोई नहीं! तुम्हारे समान राजा हैं मेरे, तुम्हारे कौन हैं? तुम परदेशी हो और मैं यहाँ का निवासी। तुम्हारी रानी लक्ष्मी जी मेरी माता हैं, तुम अपनी माता को दिखाओ, हे पुरन्दरविठ्ठल!' यद्यपि यह परमात्मा की स्तुति है किन्तु यह इतना विशिष्ट है कि इसे सुनकर भगवान भी विस्मित हो जाते होंगे। भक्ति साम्राज्य में इस तरह की व्याजस्तुति रूपी रचनाएँ असंख्य मिलती हैं। ये ऊपर से व्यंग्य भरी लगती हैं, पर उनके हृदय तक पहुँचने पर भक्त और भगवान के बीच के स्नेह, आत्मीयता और सामीप्य विदित होते हैं।

जैसे जैसे हरिदासों के हृदय में मार्दवता की मात्रा बढ़ती है वैसै - वैसे गोपियों की कातरता - आतुरता को ग्रहण करने की उनकी शक्ति बढ़ती है। विरह से व्याकुल एक गोपी सहेली से अपनी विरह व्यथा यों व्यक्त करती है, 'वेणु गान से हमें मुग्ध करनेवाले कस्तुरि वेंकटेश से मिले बिना मैं कैसे जिऊँगी? प्राणनाथ रूठकर क्यों नहीं आ रहा है? नागरी जाओ, वेणुगानलोल को ले आओ।' 'धरती पर पुरन्दरविठ्ठल सर्वेश्वर है, प्यारे वेंकटेश ही ईश है। हे कान्ता, सकलगुणसंपन्ना! प्रियतम को मना लाओ, वे हर्ष से आकर मिलें,' कहकर वह अपने आत्मसमर्पण का समाचार बिना दुराव - छिपाव के प्रकट कर देती है।

पुरन्दरदासजी ने भक्त को सुहागिन के रूप में देखा है। ऐसी सुहागिन को परमात्मा के प्रीत्यर्थ कनक वेशभूषा से सजने की कोई आवश्यकता नहीं; इनसे भी बढ़कर आचार - व्यवहार किस प्रकार भूषणप्राय बन सकते हैं इनका अर्थपूर्ण विवरण दासजी ने अपने एक कीर्तन में प्रस्तुत किया है। 'तुम कुंकुम लगाओ, श्रीरंगनाथ के दिव्य मंगल नामरूपी कुंकुम लगाओ।' इस प्रकार प्रारंभ करके बार - बार समझाते हैं कि किस प्रकार नारी का प्रत्येक वस्त्राभूषण उसके शील से अभिन्न सम्बन्ध रखता है। 'कर्ता पति के आज्ञापालन के मोतीवाले कर्णफूल पहनो, अपने कानों में तुम मोती के कर्णफूल पहनो। पल भर भी पति से नहीं बिछुडने का असली मंगलसूत्र पहनो, तुम सच्चा मंगलसूत्र पहनो। पर पुरुष को जन्मदाता पिता मानने का विचार रूपी पदक - हार पहनो। लोगों को बुलाकर खिलाने का रक्षासूत्र बाँधो, कंकण बाँध लो। आसपास के लोगों से प्रशंसा रूपी कटिबंध पहनो। घर का भेद नहीं खोलने का पावन चीर और अवगुणों को छोड़कर सद्गुणों को अपनाने की चोली धारण करो। ज्ञाननिधि गुरु के पादपद्मों में अवनत होकर जिओ और मौनियों के स्वामी श्रीपुरन्दरविठ्ठल के प्रेम की आँचल में गाँठ बाँधों।' अन्त में पुरन्दरविठ्ठल के प्रेम को आंचल में गाँठ बाँधने की बात अत्यंत हृदयहारी है। इस समूचे कीर्तन में हरिभक्तों से वाँछित आवरण का ब्योरेवार विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इस पद की भूमिका में 'सहस्रनाम के स्वामी श्रीहरि की, खुशी से सुहागिन बने रहना होगा,' नामक पुरन्दरदास के दूसरे पद के विश्लेषण करके देखने पर स्पष्ट होता

है कि भगवान को पति माननेवाले हरिभक्त या हरिदास द्वारा अपने स्वामी की मनपसन्द वेशभूषा ही पहनने की कल्पना परोक्ष रूप से मधुर भाव की ही श्रेष्ठता सिद्ध करती है। 'सद्गुरु मध्वाचार्य विरचित शास्त्र का अध्ययन ही मंगलसूत्र है, वैराग्य ही सुन्दर नथ है, तारतम्य ज्ञान ही ताबीज है और करुण रस ही श्रेष्ठ मुक्ताहार है।' इन सबसे सजकर जीवन बिताने का उपदेश पुरन्दरदास जी देते हैं।

हरिकथा श्रवण ही कानों में मोती के कर्णफूल,
निरंतर सत्कर्म रत होना ही निज तन की कांति मत भूल,
परम भक्तों की पद रज ही है शिर का सुंदर आभूषण,
गुरुभक्ति बनी है चारु कुंकुम चन्दन अंगराग परिपूरण।
इस पृथ्वी पर परहित ही पीताम्बर है,
दान रूपी धर्म ही बना कमनीय कंचुक है,
स्वामी श्री पुरन्दर विठ्ठल के प्रति अनवरत,
दृढ़ भक्ति ही बनी हैं, चूड़ियाँ परम पुनीत।

हमारे यहाँ शास्त्राध्ययन का अधिकार स्त्रियों को नहीं है, अतः सूच्यरूप से पता चलता है कि यह हरिदासों से संबध्द है। (ध्यान देने की बात है कि श्रीपुरन्दरदास जी की कृतियों को परिष्कृत करके प्रकाशित करनेवाले संपादकों (श्री. बेटेगेरि कृष्णशर्मा तथा श्री. बेंगेरी हुच्चूराव) ने इस पद की टिप्पणी में लिखा है, 'यहाँ पतिपत्नी भाव देख सकते हैं।' श्री पुरन्दरदास साहित्य-2, माहात्म्यज्ञान, 1964, पृ. 203) जहाँ गोपियों में मधुरभाव नैसर्गिक गुण है वहीं वह पुरुषों में आरोपित लक्षण है जिससे वह और भी विशिष्ट माना जाता है।

उम्मत्तूर के चन्नकेशव स्वामी के दर्शन से तन्मय होकर पुरन्दरदासजी ने एक सुळादि गाई है जिसमें इसी मधुरभाव की प्रधानता है।

मेरी आँखों में बसी रे छवि अच्युत की,
कस्तुरी मृग के ज्यों महकनेवाले अच्युत की,
आँखों में मेरी बसी रे छवि आनन्द की,
सूरज की किरणों जैसे चमकनेवाले मोहन की,
मेरी आँखों में बसी रे छवि माधव की।
हँसते हरषते मेरे पास आकर बाँहों में भरनेवाले,
क्या कहूँ, ओ माई, तुम भी दर्शन कर ले,
यों मुझे मोह लिया, ओ माई, यों मुझे लूट लिया,
उम्मत्तूर के मोहन पुरन्दर विठ्ठल ने फैलाई है यह माया।

गर्व से पुरन्दरदास जी फूले नहीं समाते। परमात्मा की झलक कितनी मोहक थी इसकी तरह-तरह से वर्णन करते हैं। उनका नटखटपन और उनकी लीला को सूच्यरूप से अंकित करके अन्त में अपने आपको समर्पित कर लेते हैं, 'उम्मत्तपुर के पुरन्दरविठ्ठल! तुम्हारे

चरणों में आया हूँ, मुझ पर कृपा करो।' यह मधुर भाव पुरन्दरदास के पदों में प्रासंगिक रूप से देखने को मिलता है। किन्तु उनमें वर्णित वात्सल्य-जगत बहुत विशाल है, अत्यन्त वैविध्यमय है।

भागवतोत्तम पुरन्दरदास जीने बाल गोपाल की खेलकूद और नटखटपन का इतना मार्मिक चित्रण किया है मानो भागवत के दशमस्कंध का सार-संग्रह ही प्रस्तुत कर दिया हो। कभी-कभी बाल-गोपाल को खुद बुलाकर उन्हें नचाते आत्मविभोर हो जाते हैं; नहीं तो यशोदा के वात्सल्य का वर्णन करने या गोपियों की शिकायत, विनती और पुकार के निरूपण के बहाने अथवा अन्तःकरण को खोलकर सामने रखते समय नन्दनन्दन का वर्णन करते नहीं थकते। शिशुरूपी श्रीपति को गोद में लेकर लालन करनेवाली गोपी के भाग्य को सराहते हुए दासजी तरस उठते हैं, 'बाल गोपाल को मैं कब गोद में लूँगा, उन्हें कब मैं बाँहों में समेट लूँगा, कब मैं उन्हें चूमपुचकारूँगा?' वे विनती करते हैं, 'यादव तुम आओ; यदुकुलनन्दन, माधव, मधुसुदन तुम आ जाओ।' दासजी चाहते हैं कि बालकृष्ण अपनी पैंजनी बजाते हुए, वेणुगायन करते हुए और बाल गोपालों के साथ गिल्ली - डण्डा, गेन्द व लट्टू खेलते हुए उन्हें दर्शन दे। शिशु शिरोमणि और मनोहर निधि के समान जगमगाते गोपाल के नन्हें पैरों को देखकर दासजी को उनकी एक-एक महिमा याद हो जाती है। इस अपूर्व शिशु की प्रशंसा करते वे नहीं थकते। वह 'ज़ान सागर में तैरनेवाला शिशु है,' वैसे ही 'दीन दासों को दर्शन देनेवाला' शिशु भी है। उनके हृदय की लालसा पूर्ण करने जब हरि आकर उनके सामने नृत्य करने लगता है, तो पुरन्दरदास की वाणी सहसा फूट पड़ती है। वे भी हरि के साथ तरह-तरह के नृत्य विनोद में सम्मिलित हो जाते हैं।

नाचा रे हरि नाचा रे॥ टेक॥
अकलंक चरित धर मकर कुंडल,
सर्वजन पालक हरि नाचा रे॥
वटपत्रशायी गल मोतीमाल,
सब जन पालक हरि नाचा रे॥

गोकुल की याद करते ही उन्हें नन्दनन्दन की सारी लीलाएँ आँखों के सामने नाच उठती हैं। यशोदा के लालन-पालन, उनकी शंका और कातरता, प्यारे श्रीकृष्ण की तुतलाहट, उनके लिए लालायित गोपीवृन्द, उनके नटखटपन से त्रस्त गोपबालाओं की खीझ - शिकायतें - एक के बाद एक कतार बाँधकर उनके अन्तरंग को घेर लेती हैं। 'लालन किया यशोदा ने अपने पुत्र का, लालन किया', कभी उस माता के अपने पुत्र को दूध-दही खिलाने का सुंदर चित्र आँखों में बंध जाता है तो कभी उस जननी के जगदोद्धारक को अपना ही पुत्र मानकर रमाने का भव्य चित्र आँखों के सामने नाच उठता है। "देखो हरि! दरवाजे से बाहर कदम न रखना, जाओगे तो कोई हरिभक्त तुम्हें उठा ले जायेगा," इस प्रकार माँ के लाख समझाने पर भी बालगोपाल कहाँ मानता है? सारे गोकुल में उसीका

राज है! सभी गोप-गोपियाँ उसके साथी हैं! पुत्र के घर लौटने पर तनिक भी देर हुई कि नहीं यशोदा की आशंका सीमातीत हो जाती है। "माई! तुम्हारे यहाँ हमारे हरि को देखा है क्या?'' -पूछते दरदर भटकती है। अपने पुत्र का हुलिया दुहराती फिरती है। पुरन्दरदास जी उस शिशु की महिमा से पूर्णरूप से अवगत थे। लौकिक ढँग से वर्णन प्रस्तुत करते समय भी वे इस बाललीला के अलौकिक महत्त्व को नहीं भूलते। श्रीकृष्ण को तैल उबटन लगाते समय यशोदा जो परंपरागत आशीर्वाद देती है उससे बालगोपाल के महत्त्व का परिचय प्राप्त हो जाता है। उसका प्रारंभ यों करते हैं, "गोपी ने तेल लगाते-लगाते उनके रूप का वर्णन करके यदुकुल तिलक को असीस दी।'' आगे आशीर्वाद यह था, 'आयुष्मान बनो, श्रीमान बनो, मायावी खलों का मर्दन करो, राजाओं का रक्षण करो, राक्षसों का निग्रह करो, वायुसुत का स्वामी बनो।' श्रीकृष्ण के समग्र जीवन के परिशीलन से पता चलता है कि यशोदा की एक-एक बात कैसे समुचित है। बालकृष्ण जन्म से नटखट है। शिशु रोया कि नहीं यशोदा विकल हो उठती हैं। इसके लिए कारण भी है। शैशवावस्था में ही उसने पूतना जैसी राक्षसी को मार डाला था। पैर हिलाने के मिस उसने शकटासुर का संहार किया था। बडे होते-होते उसका नटखटपन भी बढता गया। कालिंगमर्दन, गोवर्द्धनोद्धरण, धेनुकासुर संहार आदि उसके लिए मानो मात्र विनोदपूर्ण लीलाएँ हैं। साथ ही साथ उसने मुग्धता का स्वाँग भरकर गोपियों को जी भर सताया था। गोपियाँ तो उसके नटखटपन और हास-परिहास पर लट्टू थीं, पर वे भी कभी-कभी बालकृष्ण के उपद्रव और उत्पात से तंग आकर यशोदा के पास शिकायत लेकर पहुँच जाती थीं। एक गोपी कहती, 'हे गोपी। तुम्हारे पुत्र की लूटपाट हम से सही नहीं जाती, मैं क्या बताऊँ?' वह श्रीकृष्ण की हरकतों की सूची प्रस्तुत करती। गोपियाँ टोली बाँधकर आती हैं और कृष्ण की करतूतों की शिकायत करती हैं, "हे गोपी! तुम्हारे लाडले का उपद्रव बहुत हो चुका। तुम्हीं बताओ, हम भी कहाँ तक सहें?" गोपियों की चुगली सुनसुनकर यशोदा के कान बहरे हो गये। वह पुत्र को पास बुलाकर सीख देती है, ''मेरे राजा! बाहर जाकर मत खेला करो। पड़ोसिनों की शिकायतों को तुम नहीं जानते।'' वह नहीं मानता, तो माँ उसे तरह-तरह से डराती है। बाल गोपाल ऐसा बनता है मानो माँ के गुस्से से डर गया हो। कहता है, "हौए को मत बुलाओ, माँ। मैं भगवान जैसे एक ही स्थान में बैठ जाऊँगा।" अपने लाल की बातों पर मुग्ध होकर यशोदा मोहन को वात्सल्य से बाहुओं में भर लेती है। भोर होते ही वह फिर कातर हो उठती हैं। वह दुखी हो जाती है, "हे पुत्र! हे कृष्ण! मैं क्या करूँ, फिर से सवेरा हुआ?" गोकुल में कृष्ण की शिकायत करनेवाले जैसे थे वैसे ही उसके महत्कार्यों पर मुग्ध होकर उसकी प्रशंसा करनेवाले भी थे। "क्या, श्रीहरि की भी चुगली खाते हैं लोग!" कहते हुए वे कृष्ण की महिमा बखानते हैं। उतना ही नहीं, "ललनाएँ बाल गोपाल को घेरकर तालियाँ बजाती हुई, उसके दिव्य मंगल नाम को गाती हुई उसे नचाती हैं।" कृष्ण की करधनी के घुँघरुओं को बजाबजा कर उसे

नचाती हैं। विविध वाद्यों को बजाती हुई "कृष्ण को घेरकर ता थै ता था कहती हुई बड़े चाव से उसे नचाती हैं।" बाल गोपाल के साथ अपने आपको खोकर आप भी बच्चों की भाँति खेलती-कूदती नारियों को देखकर पुरन्दर दास जी कहते हैं, "कामिनियाँ सब मिलकर बच्चों के खेल खेलती हुई प्रेम से श्याम को बाहुओं में भर लेती हैं।" नटखट श्याम कभी-कभी माँ के पास दौड़कर अपने सखा गोपबालकों की शिकायत करता है, "माँ! मेरे सखा मेरा मजाक उड़ाते हैं। कहते हैं तू मेरी माता नहीं है, मेरे पिता भी ये नहीं हैं।" अब माता यशोदा इस प्रश्न का क्या उत्तर दे? न जाने उसने क्या उत्तर दिया। दास जी भी चुप हैं! बाल कृष्ण की इन लीलाओं का वर्णन करते दासजी नहीं थकते। दासजी जानते थे कि ये आद्यन्तरहित बाललीलाएँ उनके लिए भी वर्णनातीत हैं। वे विस्मय से हाथ जोड़ते हैं, "तीनों लोकों को अपने उदर में छिपाकर बालकृष्ण के रूप में माँ के पैरों पर लेटकर कटोरे से दूध पीनेवाले, तीनों भुवनों को अपनी माया से मुग्ध करनेवाले त्रिभुवनों के स्वामी, तुम्हारी बाललीलाओं को नमस्कार!" पुरन्दरदास द्वारा चित्रित यह वात्सल्य जगत बहुत ही रम्य है। उनका एक-एक पद सुनने योग्य है। इन पदों में से चुनना सहज संभव नहीं। कुछ भी हो, एक बार इस तारालोक से गुजरना अतीव आनन्ददायक है। गोकुल के कोने-कोने में हमें चितचोर मोहन मिलता है। वहाँ के टीले - पहाड, लता - गुल्म और नदी - पोखरों से वनमाली का वेणुगान गूँज उठता है। उसको घेरे या तो उछल - कूदनेवाले गोपबाल दिखाई पड़ेंगे अथवा ताली बजाते हुए नृत्य करनेवाला गोपीवृन्द। यशोदा के वात्सल्य की धारा कूल - किनारों को तोड़ कर सबको प्लावित कर देती है। पुरन्दरदास द्वारा चित्रित इस वात्सल्य जगत का वैभव अत्यन्त सहज है, स्वाभाविक है। यह कन्नड साहित्येतिहास के लिए उज्ज्वल देन है। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हरिदासों के हृदय में स्थित अव्याज प्रेम ही मूर्तिमान होकर इस रूप में व्यक्त हुआ है। भक्त और भगवान के बीच के इस अत्यन्त निकट निष्कल्मश बांधव्य से निसृत यह भावभीनी बानी प्रमाणित करती है कि किस प्रकार परिशुद्ध पारमार्थिक प्रेम-वर्णन श्रेष्ठ साहित्य भी बन सकता है।

भगवान की भक्ति से प्रेरित होकर पुरन्दरदास जी ने परमात्मा के दशावतारों को चित्रित करने के लिए जिन विविध विधानों को अपनाया है उन्हें देखकर हम दास जी की निपुणता पर मुग्ध हुए बिना रह नहीं सकते। आध्यात्मिक तथ्य अपरोक्ष - ज्ञानियों के स्वानुभव से जब आत्मस्थ हो जाते हैं तब वे साहित्य का स्वाद देने लगते हैं। पुरन्दरदास ने कई बार दशावतार के प्रसंगों का सीधा वर्णन प्रस्तुत किया है और अन्यत्र सूच्य या परोक्ष रूप से उनकी ओर इशारा किया है। पहले हम उनके प्रत्यक्ष वर्णन को देख सकते हैं। यह एक मंगल गीत है:

आरती शुभ आरती ॥ टेक ॥
वेदोद्धारक मत्स्या की, पर्वत धारी कूर्म की,
जगदोद्धारक वराह की, बालक - पालक नृसिंह की,

पृथिवी पाये वामन की, क्षत्रिय रिपु श्री भार्गव की,
रघुकुल मणि श्री राघव की, सत्यभामा प्रिय मुकुन्द की,
करुणा जलनिधि गौतम की, वर हय वाहन कल्कि की,
दशावतारों में भक्तजन पालक, आरती पुरन्दर विठ्ठल की।

बाल गोपाल हठी थे, उनके इस हठ के मिस भगवान के दशावतारों को प्रस्तुत करने की यह परोक्ष पद्धति हृदयहारी है।

कन्हैया मेरी बात न सुने री॥ टेक॥
गोपी, कालिया-मर्दन को समझा री॥ उपटेक॥

खुली आँखे न मूँदे नन्दनन्दन री,
पीठ पहाड ले खड़ा है री,
गोपी, निठुर हो दाढ़ दिखाई री,
तोड लोह खंबे को तुरत आया री,॥

तीन पग भूमिहि माँगी री,
परशु से नृपकुल नाश की ठानी री,
वल्कल पहन खुशी वन जाये री,
दधि - माखन को चुराये री॥

बना सब छांडि दिगंबर री,
उत्तमाश्व पर सवार री,
दशावतारों में जग पाला री,
पुरन्दर विठ्ठल नंदलाला री॥

यहाँ यद्यपि दशावतारों के नाम नहीं गिनाये गये हैं फिर भी दासजी द्वारा वर्णित हर एक प्रसंग तद्तद् अवतार की सरस सूचना देता है। इन चमत्कारपूर्ण रचनाओं में व्याजस्तुति की अनूठी योजना देखने को मिलती है। दास जी ने भगवान को ऐसे उपालभ्भ दिये हैं मानो हर एक अवतार उनके कर्मों का फल है, "प्रारब्ध कर्म के लिए कोई क्या करे? हर किसीको अपना कर्म भोगना पड़ता है। उससे कौन बचे?" "बार-बार पानी में गोता लगाने से नहीं बच सकते" कहकर मत्स्यावतार का, "बोझ ढ़ो - ढ़ो कर सिर के जड़ हो जाने पर भी नहीं'' कहते हुए कूर्मावतार का, "झटपट भूमि खोदकर ढूँढने पर भी नहीं" बताते हुए वराहावतार का और "दूसरों के सामने दाँत निपोरने पर भी नहीं" जैसे उलाहने के द्वारा नरसिंहावतार का चित्रण पद के प्रथम चरण की एक - एक पंक्ति में किया है। दूसरे चरण में "दीर्घ शरीर को कुब्ज करके माँगने पर नहीं" कहते हुए वामनावतार का, "कुलद्रोही बनकर भटकने पर भी नहीं" कहकर इक्कीस बार भूमण्डल

के पर्यटन करनेवाले परशुराम के अवतार का, "जटाजूटधारी बनकर जंगल भागने से भी नहीं" के वर्णन से श्रीरामावतार का और उसी भांति "बंसी बजाकर पशु चराने से बिलकुल नहीं" कहकर श्रीकृष्णावतार का वर्णन करते हैं। अंतिम चरण में "वीरता को त्यागकर दिगंबर बनने पर भी नहीं" कहते हुए बौद्धावतार का और "बड़े राऊत बनकर जूझने पर भी नहीं" कहकर कल्क्यावतार का वर्णन कर भगवान से ही सवाल करते हैं," हे अप्रतिम पुरन्दरविट्ठल! विधि पर कौन हावी .हो सकता है?" इसमें दास जी का उक्ति-चातुर्य अपनी सरसता और निपुणता से पाठक को मंत्रमुग्ध कर देता है।

"हे बाला! तुम इस पर कैसे मोहित हुई, कैसे मुग्ध हुई?" लक्ष्मी से यह प्रश्न करके उनके प्राणप्रिय पति की एक-एक कमी को दर्शाते हैं। पूछते हैं, ''क्या उसे देखने में सुन्दर कहती हो, पर वह चंचल है न!'' कहीं पानी में मछली भी स्थिर होती है? ऐसी स्थिति में मत्स्यावतार लेनेवाले माधव का भी वही स्वभाव होगा! ''उसे सुन्दरांग मानती हो क्या? उसकी पीठ पर कूबड है।'' ''कूर्म की पीठ देख लो। कूर्मावतार लेनेवाले हरि भी इस विकृति से नहीं बच सके।'' ''खूंटे जैसी दाढ़ और हाथ भर का चेहरा'' - वराहावतार का कैसा सुन्दर वर्णन है! इस उक्ति की सूक्ता ता वे ही जाने जो सूकर की दाढ़ और उसके चेहरे से परिचित हों। नरसिंह अवतार तो और भी भयंकर है। ''कपट से मुँह खोलके डरानेवाला'' कहकर दासजी ने इस अवतार की बाह्य आकृति पर आपत्ति उठाई है। ''यह देखने में अणुरूप है पर नाटे कद का नर नहीं''- इस वर्णन में यह बताया गया है कि वामन जो देखने में नाटा रहा वह बढ़ते - बढ़ते त्रिविक्रम कैसे बन गया। ''वन को विनष्ट करने हाथ में परशु'' - इस वाक्य को पढ़ते ही परशुधारी का चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। लेकिन यह दृश्य भी कैसा है? जंगल में लकड़ी काटने के लिए उद्यत व्यक्ति जैसा लगता है परशुराम! ''नरों को छोड़कर वानरों से मिलनेवाला'' कहकर जहाँ रामावतार की खिल्ली उड़ाई गई वहीं "घर-घर में घुसकर चोरी-छिपी खानेवाला" कहते हुए कृष्णावतार की हँसी उड़ाई है। बौद्ध अवतार की तो अन्य अवतारों से अधिक दुर्गति हुई है। यह बताने की आड़ में कि भगवान अपनी मर्यादा को भी भूलकर दिगंबर बन गये हैं पुरन्दरदास जी ने कहा है, "इस दिगंबर को भी कोई मर्यादा पुरुष कहे तो कैसे कहे?" अंतिम कल्क्यावतार तो नटों का खेल लगता है! ''अम्बर में घोड़ा नचानेवाले " इस अवतार के शोरगुल के बारे में क्या कहे? पुरन्दरदास ने इन दशावतारों का ऐसा परिहासपूर्ण चित्रण किया है मानों ये उन्हें भाते ही नहीं हों। अन्त में वे लक्ष्मी जी का मजाक उड़ाते हैं, "तुमने भी ऐसे व्यक्ति पर मोहित होकर उससे शादी कर ली" मानों दासजी इससे दुखी हों। दशावतार का यह वैविध्यमय निरूपण उक्ति - चमत्कार से मनोहर बन पड़ा है।

भगवान की लीलाओं को बखानने के बहाने दासजी ने मोहिनी-अवतार प्रसंग का बहुत ही मनोज्ञ वर्णन प्रस्तुत किया है। "ऐसी रमणी को मैंने कहीं नहीं देखा है। हे भाई! यह मायाविनी है," कहते हुए विस्मित होकर भगवान की चातुरी का निदर्शन

करते जाते हैं। क्षीर समुद्र का मंथन हुआ और देवासुरों के बीच अमृत के लिए कलह। "इन्द्रमुखी! बाँटने के लिए कहा गया, तो तुमने कपट से दैत्यों को छला," कहकर प्रारंभ में पुरन्दरदास जी प्रशंसा करते हैं। दूसरी बार, परिणाम पर ध्यान दिये बिना जब परमेश्वर ने अपने भक्त भस्मासुर को वर प्रदान किया, तब उस दुष्ट ने वरदाता पर ही आक्रमण किया। तब श्रीविष्णु को ही मोहिनी बनकर अवतरित होना पड़ा और ईश्वर का आतंक दूर हुआ। इस संदर्भ में दासजी ने, "मुस्काते हुए आकर भस्मासुर को भोगलिप्सा में फँसाकर उसे भस्म करनेवाली'' मोहिनी की स्त्री सहज चातुरी की प्रशंसा की है। अन्त में भगवान के असदृश सृष्टि-व्यापार का अंकन हास्य के पुट के साथ यों करते हैं, "संसार में विवाह के पूर्व ब्रह्म को जन्म देनेवाली है यह, नाम इस विलक्षण कन्या का है कुसुमनाभ श्रीपुरन्दरविठ्ठल!"

जब पुरन्दरदास जी श्रीकृष्ण के वेणुगान का प्रभाव या कालिया नाग के फण पर नृत्य करनेवाले नन्दलाल की शोभा का वर्णन करते हैं तब उनके कल्पना - विलास का वैभव देखने योग्य होता है। मुरलीलोल की बाँसुरी के बजते ही एक अपूर्व लोक की सृष्टि हो जाती है।

कन्हैया ने जब बजाई बाँसुरी,
मंगलमयी बनी धरती सारी,
जग के सारे जीव हो परवश,
चैतन्यशून्य हुए सब विवश॥

इस चमत्कारिक ढ़ंग से प्रारंभ होनेवाला पद हमारी आँखों के सामने एक के बाद एक सुंदर चित्र प्रस्तुत करते चलता है। यह कौशल किसी भी कवि की सर्जना से कम नहीं है। बाँसुरी की स्वरलहरों के फैलते ही लगता है कि प्रकृति के व्यापार ही बदल जाते हैं। "हवा मंद गति से बहने लगती है, सूखी डालियाँ फलने लगती हैं, अलिकुल चुप हो जाते हैं, सूखी अमराई में कोंपलें निकल आती हैं-" इन चरणों में हवा की मंद गति, सूखी झाडियों का पल्लवित और पुष्पित होना, उस नादमाधुर्य में लीन होनेवाले मधुपों की चुप्पी आदि वेणुगान के अनूठेपन को व्यक्त करती हैं। यमुना नदी की गहराई से जल के उफान की कल्पना ने वेणुगान की नादतरंगिणी के सोने में सुगंधि घोल दी है। गोपिकाओं का भावविभोर होकर आनंद सागर में डूबना सहज है किन्तु ध्यानमग्न मुनियों का जाग्रत होकर, आनन्द से चलकर श्रीकृष्ण की सेवा करके भवसागर को तर जाने की कल्पना गहन है, महत्त्वपूर्ण है। थनों से क्षीरधारा बहानेवाली गायें अपने बछड़ों को भूलकर पूँछों को उठाये श्रीकृष्ण को ही निहारती हैं। इस मनोहर दृश्य को देखकर देवतागण विस्मय से पुष्पवृष्टि करते हैं। पीताम्बरधारी, वनमाली, मोरमुकुटधारी श्रीकृष्ण जब 'नादनामक्रिया' और 'मेघरंजनी' राग बजाते हैं तब सामवेद भी 'नमो नमो' के उद्गार के साथ सिर हिलाता है। यह भव्य चित्र यहाँ समाप्त हो जाता है। इस पूरे पद के

अवलोकन से पता चलता है कि भगवद्भक्त पुरन्दरदास जी कैसे भावुक थे।

इसी तरह श्रीकृष्ण के कालिया नाग के फण पर खड़े होकर नर्तन करने के संदर्भ का भी बहुत सरस चित्रण किया गया है। "कालिया के फण पर श्री हरि ने अद्भुत नृत्य किया", नामक पद की टेक में स्वयं दासजी ने अद्भुत शब्द का प्रयोग किया है जो बहुत ही सार्थक है। श्रीकृष्ण के इस नाट्यवैभव को देखकर ब्रह्मादि देवताओं ने भूरि भूरि प्रशंसा की है। रंभा, ऊर्वशि आदि अप्सराएँ श्रीकृष्ण के पैरों की ताल पर आप भी नाचने लगती हैं। तुम्बुरु और नारद अपना सुर मिलाते हैं। नंदि मृदंग बजाने लगता है। राक्षस विस्मित होकर तितरबितर हो जाते हैं। कालिया का दम घुटते देखकर उनकी पत्नी नागकन्याएँ अपने स्वामी के प्राणों की भिक्षा माँगती हैं। समाचार सुनकर माँ यशोदा दौड़ी आती हैं और अपने पुत्र को उठाकर पुचकारती हैं। (श्रीकृष्ण बड़े दयालु हैं। कालिया को सपरिवार दूर चले जाने के लिए कहकर गोपालकों का भय दूर करते हैं। इस पद में यद्यपि पुरन्दरदास ने इसे नहीं कहा है फिर भी यह सर्व विदित है।) इस पद का मुख्य उद्देश है दुष्ट शिक्षण, पर इसमें निहित साहित्य सौंदर्य अनिर्वचनीय है। पुरन्दरदास की सारी कृतियों में भगवान की भक्ति स्थायी रूप से विद्यमान है, पर उनकी वाणी में पाये जानेवाले भावावेश और रसार्द्रता के कारण वे कैसे उत्कृष्ट कोटि की रचनाएँ बन गयी हैं, इसे हम सहज ही देख सकते हैं।

श्रीकृष्ण के रूपवर्णन में पुरन्दरदास जी अग्रणी हैं। श्यामसुन्दर आप भी रीझ कर आसपास के पशुपक्षियों को भी रिझाते हैं। पुरन्दरदास ने एक छोटे-से पद में इस भाव का बहुत ही रमणीय चित्रण प्रस्तुत किया है। "गारुडि श्रीवेणुगोपाल की जो निहारे वे ही नयन हैं, सुननेवाले कान, उनका गुण गाये वही मुँह है" से प्रारंभ होनेवाली टेक कितनी चित्ताकर्षक है! "देखे जो आँख, सुने वह कान और गाये स मुख " नामक इस टेक में प्रयुक्त क्रियापदों के प्रश्नार्थक रूप ग्रहण करते हैं तो एक प्रकार का चमत्कार देख सकते हैं और अवधारणार्थ में लेने पर अलग अनूठापन दर्शित होता है। अब श्रीकृष्णलीला को देखें। "सोने की बाँसुरी बजाते हुए पशुपक्षियों को मुग्ध करनेवाला अंगजजनक कृष्ण गोपांगनाओं के साथ ज्योत्स्ना में विहार करता है।" "यह वेणुगोपाल मोर जैसे नाचता है, हंस की तरह कूक उठता है, मृगशावक की भांति फुदकता है, भ्रमर की तरह गूँजता है।" श्रीकृष्ण के आमोद - प्रमोदों को एक-एक करके उपमानों के जरिए चित्रित करने का श्री पुरन्दरदास जी का विधान उनकी कवि सहज वाणी का परिचय प्रदान करता है। यहाँ उदाहृत एक एक प्राणी अपना आनंद भिन्न-भिन्न रीति से व्यक्त करता है। मोर का नर्तन, हंस की चाल, कोयल शावक का मंजु गान, मृगशावक की कुलेल, भ्रमरों का गुंजन आदि के आकर्षण से परिचित पुरन्दरदास जी चित्तचोर श्याम के इन विविध विन्यासों को देखने की सूझ रखते हैं। मोहनांग श्रीकृष्ण स्वयं सुंदर बनने से संतृप्त नहीं हैं। "वक्र कुब्जा के भी कूबड को ठीक करके उसे सुंदरी बनाकर मुक्त करने का" उदार हृदय भी उनके पास है। वे सदैव "शरणागतों के सुरधेनु" हैं कहकर दासजी श्रीकृष्ण

की प्रशंसा करते हैं। इस पद में पुरन्दरदास द्वारा प्रदर्शित रसार्द्रगुण रसिकों को मंत्रमुग्ध करता है।

पुरन्दरदास जी का लोकानुभव भी काफी विस्तृत है। प्राय: वह आध्यात्मिक क्षेत्र तक परिसीमित है फिर भी मानव के गुणावगुण के विश्लेषण की उनकी सामर्थ्य अद्भुत है। "मुझे हँसी आ रही है, दुनिया में चतुरों की करतूतों को देखकर मुझे हँसी आ रही है" से प्रारंभ होनेवाले पद में दासजी अति बुध्दिमानों के कपटाचरण की आलोचना करके उसका खण्डन करते हैं। "इन तीनों में से बताओ तुम्हारे हितू कौन है — नारी, धारिणी या अतुलनीय श्री — इस प्रश्न के द्वारा कामिनी, कंचन और भूखण्ड की चंचलता का ऐसा प्रभावकारी चित्रण प्रस्तुत किया है कि लोगों का मन सहज ही इनसे उचट जाय। "जब भगवान ने बख्शा तब खाया नहीं, अब छीन लिया तो खीजते क्यों हो, प्राणी?" एक परमलोभी को दिये गये इस उपालम्भ से पुरन्दरदास की जीवनदृष्टि में हुए परिवर्तन की महत्ता का परिचय प्राप्त होता है। "शुचिता, शुचिता, शुचिता कहकर पल-पल क्यों उछलते हो, शुचिता की रीति न्यारी है" कहकर बाह्याचार की न केवल अवहेला करते हैं बल्कि इस कथन के द्वारा कि "बड़ेबूढ़ों, गुरुजनों व हरिदासों के चरणकमलों को भक्ति से स्पर्श करके पुरन्दरविठ्ठल का दिनरात स्मरण करना ही शुचिता है,'' अन्तरंग शुद्धि तथा सदाचार को प्रश्रय देते हैं। ''यह रंच मात्र भी पद्मनाभ की भक्ति नहीं, यह केवल उदर वैराग्य है'' -इस पद में दासजी ने आदि से अंत तक दिखावे का खण्डन किया है। भगवान की पूजा के बहाने अनेक मूर्तियों की प्रदर्शिनी लगाकर आराधना करनेवालों के कपटाचार को देख ''कंसेरे की दुकान की तरह कांस्य व पीतल की प्रतिमाओं को सजाकर, उन्हें चमकाने के लिए असंख्य ज्योतियों को जगाकर पूजा की बहानाबाजी करना'' उदर वैराग्य ही है। ऐसा कहकर छद्म वैरागियों की खिल्ली उड़ाई गई है। ''जिसका मन शुद्ध नहीं है उसे मन्त्र का फल कैसे? जिसका तन शुद्ध नहीं है उसे तीर्थ का फल कैसे? पवित्र धाम श्रीशैल में बसे कौए की भांति, पवित्र तीर्थ में स्नान कर मन को शुद्ध किये बिना, केवल बाह्य शुचि से तृप्त होनेवालों को देख आश्चर्य से श्रीपुरन्दरविठ्ठल हँस पड़ता है" -इस उगाभोग का एक-एक चरण कशाघात के समान परिणामकारी है।

पुरन्दरदास के उपदेशों में प्रयुक्त उपमान उनके रसानुभव और जीवनानुभव के प्रतीक जैसे हैं। पूरे एक पद में उन्होंने दुष्टों के स्वभाव का यथार्थ विश्लेषण यों किया है, "धरती पर दुर्जन बबूल के पेड़ जैसे होते हैं। आमूलाग्र कांटों से लैस होते हैं, अत: धूप में थकेमांदे को छाया का आसरा नहीं, भूखे को फल नहीं, कुसुमों में सुगंधि नहीं, न ही विश्राम लेने के लिए ठौर।" इसी तरह "नीम को गुड़ से मिलाने से क्या लाभ?" से प्रारंभ कर समाज में देखे जानेवाले कुटिल, मिथ्यावादी, कपटी, कृतघ्न, पतिद्रोही, पंक्तिभेद करनेवाले आदि घातकों के नीचगुणों को दर्शाया है। "पापी क्या जाने दूसरों के सुख - दु:ख, क्रोधी क्या जाने शांति नाम का सुगुण, अरगजा की सुगंधि गधा क्या जाने, मृत्यु क्या जाने दया धर्म, जूँ क्या जाने जुही की खुशबू," इस तरह वाग्बाणों की झडी बरसाकर

अन्त में यह प्रश्न पूछकर सबको सजग करते हैं, "मुँह माँगा वर पुरन्दरविठ्ठल के अलावा अन्य छुटपुट देवता थोड़े ही दे पावेंगे?" कह सकते हैं कि पुरन्दरदास के समान मूर्खता के विविध मुखों को समझानेवाले और कोई नही हैं। निदर्शनार्थ एकाध उदाहरण देखें। "रिश्ते नाते में कर्ज देनेवाला मूर्ख है, धन को दूसरों के हवाले करनेवाला मूर्ख है, घर - जँवाई बननेवाला अति मूर्ख है और बुढ़ापे में शादी करनेवाले से मूर्ख कोई नहीं।" बताइए कि इनकी अवहेला कौन कर सकता है? सबके सामने अपमानित करके पीछे से पुरस्कृत करनेवालों के कुहक से वे खूब परिचित थे। एक अर्थगर्भित सादृश्य के जरिये उन्होंने इसका बहुत ही सरस निरूपण किया है; यह ऐसा ही है जैसे ''सबके सामने मानहानि करके पीछे से जागीर देना, सामनेवाली लटों को काटके पीछे से जूड़े में फूल खोंसना।" नास्तिकों को देख पुरन्दरदास जी आग - बबूला नहीं होते बल्कि कुतूहलवश कह उठते हैं, "न जाने इन लोगों को क्या हो गया है, मौन साधकर हरि को भूल गये हैं।" इससे उन्हें दुख होता है। वे पश्चात्ताप से कहते हैं, "बिच्छू के पौधे ने डंक मारा है? दोनों ओठों को काँटों ने सी लिया है? हरि के नाम लेने से इनका सिर धड़ से अलग हो जायगा क्या?" वचनभ्रष्टों का संग कितना कष्टदायी हुआ करता है, इसे दासजी कई दृष्टान्तों के जरिये समझाते हैं। उनका कहना है कि यह ऐसा ही है जैसे, "थके माँदे आदमी को झाडियों के मेड़ से टिकने पर, भूखी बिल्ली को कपास खाने पर, बन्दर को गरम पत्थर पर बैठने पर और चोर को तिलहन की खेतों में घुसने पर होता है।" देखने योग्य है कि यहाँ एक - एक उक्ति कैसी अनुभवपूर्ण है। "प्रतिज्ञाभ्रष्टों पर विश्वास पुरुष के नारीवेश जैसे और धूप का फल खाकर तड़पने के समान है" कहकर इस वर्तुल में फँसकर चटपटानेवालों के प्रति अनुकंपा दिखाते हैं। हरिभक्त पुरन्दर दासजी यदाकदा उपमानों की माला प्रस्तुत करने में कैसे निपुण हैं इसके लिए एक उगाभोग उद्धृत कर सकते हैं।

लिखा है जैसे किस्मत में, जीना है वैसे दुनिया में।
चिड़ियाँ बैठी आंगन में, उड़ गई पल भर में।
घरोंदा बनाया बच्चों ने, तोड़के भागे जल्दी में।
हाट लगी थी रंगरंगीन, उखड़ी चली अपने रास्ते में।
आया था मुसाफिर रात में, जाग चला गाँव सवेरे में।
हे पुरन्दर विठ्ठल, छुड़ाओ, ऐसी नश्वरता है इस जग में।।

यहाँ का हर एक उपमान सिद्ध करता है कि हमारा जीवन कैसा क्षणिक है। पौराणिक प्रसंगों का भी इसी तरह उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करने की उनकी सामथ्र्य और एक उगाभोग से समझ सकते हैं।

बलि के यहाँ वामन आया जैसे,

भगीरथ के पास गंगा जी आयी जैसे,
मुचुकुन्द के यहाँ मुकुन्द आया जैसे,
विदुर के घर श्रीकृष्ण आये जैसे,
विभीषण के घर श्री राम आये जैसे,
तुम्हारा नाम, हे पुरन्दरविट्ठल, वैसे ही वैसे,
मेरी जिव्हा पर बसे, मेरी रक्षा करे वैसै ॥

वैद्यों की रीतिनीति से अवगत कौन नही है? साधारणतया भगवान को भवरोग वैद्य कहते हैं। "मैं किसी वैद्य को नहीं जानता। हे श्रीहरि! तुम ही भवरोग वैद्य हो, " कहकर भगवान की प्रशंसा करते हुए वैद्यशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग कर बहुत ही सरस रीति से बताया है कि वे इनका कैसा इलाज करें। वे प्रार्थना करते हैं, "हे कृष्ण! तुम मेरी नाड़ी देखो, कपटरूपी उष्ण - वायु को भगाओ। इसके लिए विष्णु - भक्ति रूपी औषधि देना। मैं तुम्हारा सेवक हूँ। कष्ट दिये बिना दवा देकर मुझे भला चंगा बनाओ।" उन्हें पूर्ण विश्वास था कि अपने कष्ट रूपी उष्ण वायु रोग के लिए विष्णुभक्ति की दवा ही सूक्त है। वे प्रश्न करते हैं, "हे हरि! तुम्हारी शरण रूपी रस में तुम्हारे चरण ध्यान रूपी परिणामकारी टिकिया प्रदान करके पापरूपी रोग को दूर करनेवाले बन्धु तुम्हारे बिना और कौन हो सकते हैं?" "पातक मुझे क्यों सताते हैं? मैं आपका दास जो ठहरा! हे पुरन्दरविट्ठल! तुम महामहिम हो। मुझे संकटों से पार करनेवाले तुम्हारे सिवा और कौन हो सकते हैं? " कहकर अन्त में श्रीहरि की शरण जाते हैं। दासजी बड़ें संकट में फँस गये हैं। उन्हें भवरोग लग गया है! इस जनन-मरण से पार करनेवाले परमात्मा ही हैं; उनको छोड़कर और किसी वैद्य से यह संभव नहीं है। इसलिए पुरन्दरदास जी इस रोग के लक्षण बताते हैं और परमात्मा से इसका निदान माँगते हैं। इस बात को जन साधारण भी आसानी से समझ सकते हैं।

पुरन्दरदास जी का उपमा - जगत जितना विस्तृत है उनका रूपक - साम्राज्य भी उतना ही विशाल है। आँखों के सामने बीतनेवाली किसी भी घटना का वे सहज ही अपने नीति बोध के लिए उपयोग में ला सकते हैं। ढ़ोल बजानेवाले को देखते ही यह कहकर उपदेश देते हैं, "सारे सेवक ढोल बजाकर घोषणा करो कि भूमण्डल के परम दैव पुरन्दरविट्ठल ही हैं।" नगाड़ा बजानेवाले को देखने पर भी नहीं चूकते। कहीं से घंटानाद सुना नहीं कि दासजी सीख देकर सुधारने का यत्न करते हैं, "घंटानाद हो रहा है, सुनो हरिदासो। उस मनुष्य का जीवन व्यर्थ है जो श्रीश का भजन नहीं करता।" डमरू बजानेवाला दिखा नहीं कि डमरू के अनुरूप ध्वनि में कह उठते हैं, "हे मन! संशय दूर करो, इस खानदान की जय निश्चित है।" इसी लोकसाहित्य शैली में उपनिषत् का सार बहुत ही सरल रूप से गाकर तुष्ट होते हैं।

पुरन्दरदास जी के हृदय में छलकनेवाली हरिभक्ति के वैविध्य में निहित कल्पनासौंदर्य,

मानव मन की दुर्बलता के विशद चित्रण के अन्तरार्थ और उस शैली के विविध विन्यासों के परिशीलन से इस भक्ति - साहित्य की महिमा और गरिमा को हम सहज ही समझ सकते हैं। ये रचनाएँ उद्देशपूर्ण कृतियाँ नहीं होने पर भी इसमें संदेह नहीं है कि ये एक हरिभक्त के रसार्द्र चित्त से अनायास निसृत आत्मगीत हैं।

(iii) गान माधुर्य

हमने अब तक यह देखा कि पुरन्दरदास जी की रचनाएँ आध्यात्मिक दृष्टि से जितनी गरिमामय हैं साहित्यिक दृष्टि से भी उतनी ही श्रेष्ठ हैं। कई गायन कला विशारदों का कहना है कि, 'कर्नाटक संगीत पितामह' प्रशस्ति के पात्र पुरन्दरदास जी की कृतियाँ संगीत की दृष्टि से भी प्रशंसनीय हैं। श्री पुरन्दरदास जी से प्रेरणा ग्रहण करनेवाले श्री त्यागराज जी ने 'प्रह्लाद भक्तविजय' नामक संगीत रूपक में पुरन्दरदास जी की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है, "पाप - संकुल का परिहारक हरिगुण - संकीर्तन में सदा तल्लीन रहनेवाले श्री पुरन्दरदास का मैं हृदय से स्मरण करता हूँ।" इससे बढ़कर प्रशंसा और क्या हो सकती है! पापसमूहों की नाशकारक हरिस्तुति सर्वदा करनेवाले पुरन्दरदास जी का श्री त्यागराज ने केवल स्मरण मात्र नहीं किया है बल्कि उन्हीं के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए बहुत दूर चले आए हैं। दोनों की रचनाओं में पाये जानेवाले सादृश्यों के आधार पर स्व. के. वासुदेवाचार्य तथा अन्य संगीतज्ञों ने इसे सिद्ध किया है। अब तक यह सर्वमान्य हो चुका है कि कर्नाटक संगीत सीखने की प्रशिक्षण - व्यवस्था के जन्मदाता पुरन्दरदास जी ही हैं। 'संगीत सारामृत' के रचयिता तुळजाजिराज ने दासजी की सुळादियों के प्रयोग की विधि की बड़ी प्रशंसा की है। 'संगीत संप्रदाय प्रदर्शिनी' नामक ग्रंथ के कर्ता सुब्बराम दीक्षित ने पुरन्दरदास की इन रचनाओं को अपने लक्षण ग्रन्थ में लक्ष्य के रूप में उद्धृत किया है। इससे पता चलता है कि संगीत की दृष्टि से श्री पुरन्दरदासजी की कृतियाँ कितनी मूल्यवान हैं। हम कह सकते हैं कि श्रीपादराज तथा श्रीव्यासराय द्वारा कन्नड में प्रयोग में लाये गये पद, सुळादि, उगाभोग, वृत्तनाम आदि नये प्रकारों को पुरन्दरदास ने सफलतापूर्वक लोकप्रिय बनाया।

इन संगीत प्रकारों के स्वरूप, नामनिर्देशन व गायन - पद्धतियों के बारे में संगीततज्ञों में मतैक्य न होने के कारण यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है। केवल बन्ध की दृष्टि से देखा जाय तो पद बहुत ही सरल होते हैं और लगता है कि यही उनके अधिक संख्याप्रमाण का कारण है। पद में टेक या पल्लवी का पात्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। समग्र पद की वस्तु का सारसंग्रह ही टेक (पल्लवी) है। जैसा नाम से ही स्पष्ट है उपटेक या अनुपल्लवी जो टेक का पोषक बनकर आती है उपप्रधान है और ऐच्छिक है। बाद के एक एक चरण में भी टेक के ही भाव का विस्तार करते जाते हैं। कुल

पद में एकैक भाव अंकित मिलता है। सुळादि का शिल्प पद के बंध से एकदम भिन्न है। इसकी रचना सप्ततालों पर आधारित होती है। हर एक चरण में विषय का प्रतिपादन जारी रहता है। पद में केवल अंतिम चरण में 'अंकित' रहता है। सुळादि के हर चरण में वह पाया जाता है। सुळादियों के विश्लेषण से पता चलता है कि इसका उपयोग किसी गहन तत्व के विस्तृत प्रतिपादन के लिए सूक्त माध्यम के रूप में किया जाता है। अंतिम चरण में जिसे 'जते (जोडी)' कहते हैं, सभी चरणों के सार को संग्रहीत करते हैं। पद में जो स्थान टेक (पल्लवी) और उपटेक (अनुपल्लवी) का है वही स्थान 'जोडी' का सुळादि में होता है। उगाभोग तो सुळादि के फुटकर चरणों से साम्य रखता है। हरिदासों के गहन अनुभवों को यथासाध्य संक्षिप्त रूप से व्यक्त करने के लिए यह विधा अत्यंत सूक्त है। इसमें विषय - विस्तार की जगह विषय - संग्रह ही अधिक होता है। वृत्तनामों के बारे में पर्याप्त अध्ययन नहीं हुआ है। यद्यपि इनमें चरणों को श्लोक - वृत्त कहा गया है फिर भी ये हमारे परिचित श्लोक और वृत्तों के नियमों से बद्ध नही हैं। प्रसिद्ध वृत्तनामों को देखने पर लगता है कि हरिदासों ने इनमें संवादों के नियोजन से अपने निरूपण में नाटकीयता लाने का प्रयास किया। इस दिशा में और अनुसंधान की आवश्यकता दीख पड़ती है।

उनके एक पद से पता चलता है कि पुरन्दरदासने 4,75,000 कृतियों की रचना की है। किन्तु उपलब्ध रचनाओं की संख्या अत्यल्प है। वह सहस्त्र से अधिक नहीं हो सकती। इनमें भी उनके पुत्र तथा अन्य लोगों की रचनाओं को निश्चित करके घटाने पर बचनेवाली दासजी की कृतियों की संख्या और भी कम है। विजयनगर साम्राज्य के पतन के साथ पुरन्दरदास की बहुत - सी रचनाएँ लुप्त हो गईं। साथ ही अपनी कृतियों के लिए दासजी द्वारा स्वयं निर्देशित रागसंयोजन भी प्रयोग से उठ गये। इस संबंध में विजयनगर साम्राज्य के पतन से पूर्व के लिखित साक्ष्याधारों को खोज कर उनका विश्लेषण करने से हम किसी सही निर्णय पर पहुँच सकते हैं। प्रस्तुत परिस्थिति में, अंतिम निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ होने पर भी पुरन्दरदास जी के गायनकला - प्रेम और कौशल के लिए उनकी एकाध कृति का उदाहरण ही पर्याप्त है।

हरि न सुनेगा, न कभी सहेगा ऐसा गान॥ टेक॥
ताल रहे, पखावज बाजे, पर प्रेम रहित यह गान॥ उपटेक॥
तानपूरे के संग सकल बाजे बजते हों,
बाँसुरी हो, श्रृंग हो, मधुर स्वरों का संगम हो,
जो हरि तुंबुरु - नारद के गायन पर रीझे,
सोई दिखावे के इस चिल्लाने पर बहुत खीझे॥ टेक॥
मधुर रागरागिनियों में तन्मय हो कोई गावे,
नाद - माधुर्य हो उसमें, आत्मानुभूति भी लावे,
पर दानवारि के दिव्य नाम की महिमा रहित,

तुच्छ संगीत ही होगा यद्यपि सरस साहित्य विहित ॥ टेक ॥
बार - बार आनन्दाश्रु बहाते, रोमांचित होते,
सदा सर्वदा जहाँ तहाँ, हरि का नाम ही जपते रहते,
वरभक्तों की संगति में हरि महिमा गाते रहते,
श्रीपुरन्दरविठ्ठल का नाम जो ले वही गान हरि सुनते ॥ टेक ॥

इस पद में पुरन्दरदास ने दैवभक्ति और संगीत के बीच में अटूट सम्बन्ध का विशद स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है। नारद 'भक्ति सूत्र' में भक्ति को प्रेम (सा तु अस्मिन् परम प्रेमरूपा - 2) कहा गया है। इसे ध्यान में रखकर देखा जाय तो नारदांश संभूत के रूप में पूजित पुरन्दरदास जी द्वारा इस पद की उपटेक (अनुपल्लवी) में प्रेम शब्द का प्रयोग बहुत ही अर्थपूर्ण है। यह उनका मत है कि हृदय के अन्तराल में निसृत भक्त की उक्ति ही संगीत है। वे समझते हैं कि संगीत की पूर्ण साजसज्जा के होते हुए भी गायक में भक्ति न हो तो ऐसा संगीत भगवान को नहीं भाता। पुरन्दरदास जी को इस दिव्य आनन्द का अनुभव हुआ था, इसलिए वे अपने दृढ विश्वास को इस पद में व्यक्त करते हैं।

गायक के लिए वातावरण कैसा हो, इसका सुन्दर उत्तर दासजी ने और एक पद में प्रस्तुत किया है।

ताल चाहिए, झाँझ चाहिए, साथी भी चाहिए ॥ टेक ॥
शांत प्रशांत वातावरण चाहिए गायन के लिए ॥ उपटेक ॥
यति - प्रास हों, गति - ज्ञान हो रुकने के लिए,
रति - पति - पिता में अत्यन्त प्रेम चाहिए ॥
गला सुरीला हो, गीतों का मर्मज्ञान हो,
अति आकुलता न हो, चेहरा कांतिमान हो ॥
सम्मुख रसिक पारखी हों, गाना सुन आनन्द बढ़े,
पुरन्दर विठ्ठल को ही, अपरंपार कह आगे बढ़े ॥

इस पूरे पद में पुरन्दरदास ने श्रेष्ठ संगीत के सारे लक्षण प्रस्तुत किये हैं। एकत्रित रसिकवृन्द, गायक की सुरीली आवाज, उससे चुने गये साहित्य का स्वरूप, गायन में तल्लीन उसके मुख की कांति आदि सारे विषयों का उन्होंने उल्लेख किया है। परमात्मा के प्रीत्यर्थ संगीत को भी एक साधन मानने का पुरन्दरदास का आशय भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही है।

पुरन्दरदास ने कई पदों में प्रासंगिक रूप से न केवल अनेक रागों के नाम लिये हैं, बल्कि 'बत्तीसरागों' का उल्लेख भी किया है। इससे मालूम होता है कि दासजी ने तत्काल प्रचलित बत्तीस रागों में अपने पद निबंद्ध किये हैं। अब तक उपलब्ध पुरन्दर - साहित्य पूर्ण नहीं है। पहले इस कार्य को शास्त्रीय ढंग से संपन्न होने की आवश्यकता है। बाद में संगीत तज्ञों द्वारा अब अप्रचलित उन कृतियों को सूक्त राग और ताल में निबद्ध करने का कार्य हो सकता है। पुरन्दरदास जी की रचनाएँ भक्ति प्रधान हैं। इसका यह

अर्थ नहीं कि वे केवल भजन करने योग्य हैं या वाग्गेयकारों की कृतियों के समान उनमें धातु को प्रधानता देकर साहित्य को गौण माने। ध्यान देने योग्य है कि पुरन्दरदास जी के समय और कर्नाटक संगीत के त्रिमूर्ति श्री त्यागराज जी, श्यामाशास्त्री जी तथा मुत्तुस्वामी दीक्षित जी के समय के बीच एक लम्बी अवधि का अन्तर है।

कर्नाटक के हरिदासों की एक बृहत परम्परा है। उनमें से प्रमुख हरिदासों की चुनी हुई कृतियों को यदि हमारे गायनकला विशारद राग - ताल में निबद्ध करें तो बहुत बड़ा उपकार होगा। इस क्षेत्र में कई विद्वानों ने कुछ साधना की है। उसका सदुपयोग करना दूसरों का काम है। जहाँ पुरन्दरवाणी धार्मिक दृष्टि से 'पुरन्दरोपनिषत्' कहलाती है वहीं साहित्यिक दृष्टि से अपरोक्षानुभव तथा लोकानुभव की अक्षय निधि मानी जाती है। इन दोनों के बीच का मधुर बांधव्य ही यहाँ गानमाधुर्य के रूप में अवतरित है।

4. पुरन्दर प्रशस्ति

पुरन्दरदास जी वैष्णव भक्ति प्रचार मात्र से संतृप्त नहीं थे। उन्होंने समस्त मानव समुदाय को एकता - सूत्र में बाँधनेवाले कतिपय सार्वत्रिक विचारों को सर्वजनप्रिय तरीके से व्यक्त किया है। "मानव शरीर से क्या लाभ ?" कहकर शारीरिक व्याधिव्यथाओं की अवहेलना की बातें करने पर भी अन्यत्र मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता भी पुन: पुन: दर्शायी है। "मानव जन्म श्रेष्ठ है। मूढ़ो! इसे व्यर्थ न गँवाओ।" वे उपदेश देते हैं कि शरीर के स्वस्थ रहते ही भगवान की सेवा करनी होगी क्योंकि रुकने के लिए लाख प्रार्थना करने पर भी यमदूत नहीं टलते। अत: बुद्धिमानी इसीमें है कि आक्रमण होने से पूर्व ही धर्म का अर्जन कर लेना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि सब लोग इससे सहमत होंगे। "जीना है जीतना है" कहकर उन्होंने जीवन के द्विमुख आदर्श के प्रति इशारा किया है। जीवन से न डरे, न ही उसे शाश्वत मानकर धोखा खाये। कमल पत्र के समान पानी में रहने पर भी गीला न हो। काजू के फल की गुठली फल से लगी तो रहती है पर फल से बाहर! इसी तरह निर्लिप्त होकर जीवन बिताना होगा। त्रिकरण शुद्धि का उल्लेख करते समय पुरन्दरदास जी तनमन के परस्पर लगे रहने पर ही जोर देते हैं। काया को पानी में डुबोने से क्या लाभ ? मनुष्य के मन में दृढ भक्ति होनी चाहिए। सदाचार, सत्संग तथा अतिथि अभ्यागतों की सेवा को स्नान सदृश मानते हैं। इसी तरह दास जी सत्य को बहुत महत्त्व देते हैं। ''सत्य ही स्नान, उपवास, जप, नियम है'' - इस तरह सात्विक जीवन के स्वरूप को सूत्रबद्ध रूप से समझाते हैं। मानव मन की तह - तह को पहचाननेवाले दास जी कहते हैं, ''मन का परीक्षण करो, हर दिन करनेवाले पाप-पुण्य का लेखा जोखा रखो'' की भूमिका के साथ धर्माधर्म के विश्लेषण का रहस्य बताते हैं, "धर्म और अधर्म को अलग कर अधर्म की नसों को काटो, परब्रह्म मूर्ति के पादकमल को भजकर निर्मलाचरण करो।'' ''तन के खण्डन से एक बार विरत हो जाओ, मन को ठिकाने पर लगाकर भगवान को देखो।'' उनकी इस हितोक्ति पर ध्यान देने से पता चलता है कि तन मन दोनों के एक साथ परिशुद्ध रखने के सिद्धान्त को वे कितना महत्त्व देते थे। हर दिन की पापपुण्य की लेखा उसी दिन बनाकर देख लेने का तत्त्व पूर्वाश्रम के व्यापारी पुरन्दरदास के मनोधर्म के अनुकूल ही है। वचनशुद्धि को प्रतिपादित करने का उनका क्रम कितना परिणामकारी है। ''हे आचाररहित जिव्हा। तुम अपनी नीच बुद्धि त्याग दो। विचाररहित होने पर भी परनिंदा के लिए कैसे आगे की ओर झुकी रहती हो ?'' जिव्हा की कुचाल

की सूची तैयार करके उसे फटकार सुनाते हैं और अंत में उपदेश देते हैं, ''भगवान को भजो। हे जिव्हा, श्रीहरि का स्मरण करो।'' केवल परमात्मा की सेवा के लिए त्रिकरणों को किस प्रकार सुरक्षित रखना चाहिए, इसे एक छोटे से उगाभोग में यों समझाया है, ''मनोवचनों में, कायाकर्मों में तुम ही हो, तुम ही हो, तुम ही हो, हे पुरन्दरविठल!'' अब तक 'सत्यं वद, धर्मं चर' नामक आर्ष वाक्य के प्रथमार्ध का महत्त्व समझ लिया गया। अब धर्माचरण की बारी है। धर्म की व्याख्या करने के लिए पूछा जाय तो पुरन्दरदास जी के इस पद की ओर इशारा कर सकते हैं।

धर्म ही विजयी होगा, यह है दिव्य मंत्र॥टेक॥

मर्म जानकर इसका, सजग हो, जीने का तंत्र॥उपटेक॥

जहर खिलावे जो उसे राजभोग परोसो,
बैर ठाना है जिसने उसको पालो पोसो,
झूठा इलजाम लगानेवाले की भूरि भूरि प्रशंसा करो,
दगा करनेवाले के नाम से अपने पुत्र को पुकारो॥

पीठ पीछे निंदा करनेवाले की वंदना करते रहो,
बंदी बनाया जिसने उससे बारबार मिलते रहो,
हंतक वैरी के घर चलकर पहुँचो पैदल,
दोषदर्शी के साथ दोस्ती करो मिलजुल॥

जो घसीट कर ले जाये और मारे उसकी पूजा करो,
जलनेवालों को बारबार घर बुलाया करो,
अपने को धन्य बनाओ प्रशंसा कर,
पुंडरीकाक्ष श्री पुरन्दर विठल की बारबार॥

मानव मन परिपक्व होकर पारमार्थिक दृष्टि के उत्तुंग शिखर पर पहुँचता है तब वह कितना उदार और उदात्त बन सकता है इसका चित्रण ऊपर के पूरे पद में पाया जाता है। हर चरण में बताया गया है कि मानव कैसी कैसी परिस्थिति में फँस सकता है। किन्तु यदि उसमें लवलेश भी प्रतीकार मनोधर्म नहीं रहता तब उसके लिए कोई भी घटना अहित नहीं लगती। साधारण चेतना का भी सतत प्रयत्न से किस प्रकार उद्धार संभव है, इसका दास जी ने इस पद की टेक में बहुत अर्थपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है। "धर्म की विजय नामक दिव्य-मंत्र" - यह छोटासा अर्थपूर्ण वाक्य "यतो धर्मः ततो जयः" नामक संस्कृत उक्ति का सार-संग्रह है। इस दिव्य मंत्र के रहस्य को समझकर जीना ही 'तंत्र' कहलाता है। यहां 'तंत्र' कहने से मंत्र के अनुकरण कर संपन्न करनेवाली क्रिया समझना चाहिए।

तंत्र की अर्थव्याप्ति बहुत बडी है। इसलिए पुरन्दरदास जी जब 'करना ही होगा तंत्र' कहते हैं वे मंत्रोचित कर्म का विवरण देते हैं और धर्मपूर्ण कार्य और चर्चाओं को अनुदिन के जीवन से अन्वित करके विशदीकरण प्रस्तुत करते हैं। "उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" -भवभूति की इस उक्ति की भी यहाँ याद किये बिना रह नहीं सकते। पुरन्दरदासजी की दृष्टि कितनी विशाल है यह इस पद से जाना जा सकता है। भगवान की कृपा के पात्र बनकर उन्होंने इस उत्तमोत्तम गुण की साधना से सिद्धि प्राप्त की। यही कारण है कि यह प्रशस्ति उन पर अक्षरश: खिलती है :

ज्ञान भक्ति वैराग्य संपन्नं भक्तिमार्ग प्रवर्तकम्
पुरन्दरं गुरुं वन्दे दासश्रेष्ठं दयानिधिम्।

●●●

पुस्तक-सूची

1.	हरिभक्ति सुधा (1938)	रंगनाथ दिवाकर
2.	हरिदास साहित्य (1944)	बेलूर केशवदास
3	पुरन्दर दास व उनके पद (1944)	जी.वरदराजराव
4.	(i) श्री पुरन्दरदास की रचनाएँ (द्वितीय संस्करण 1947)	सं.एम.रामराव
	(ii) पुरन्दरदास के पद (पाँच खण्ड 1963)	सं.पावंजे गुरुराव
.	कर्नाटक का हरिदास साहित्य (1952)	आर.एस.पंचमुखी
.	पुरन्दरदास का जीवन चरित (1956)	राघवेन्द्रचार्य पंचमुखी
.	पुरन्दर दर्शन (1963)	डॉ.वी.वी.शेणै
	श्री पुरन्दरदास दर्शन (1963)	सं.के.विश्वंभर उपाध्याय
.	श्री पुरन्दरदास जी (1963)	जी.ए.रेड्डी
.	कर्णाटक भक्त विजय (तृतीय संस्करण 1963)	बेलूर केशवदास
.	दास प्रभा (1963)	सं.कु.शि.हरिदास भट्ट
.	पुरन्दरदास (1964)	एस.के.रामचन्द्रराव
	श्री पुरन्दरदास जी (1964)	सं.बुर्लि बिंदुमाधव
	कर्णाटक के हरिदास (1965)	डॉ.एच.के.वेदव्यासाचार्य
	श्री पुरन्दरदास दर्शन (1969)	आर.जी.कुलकर्णी
	प्रसादयोग (1972)	डॉ.व.अ.दिवाणजी
	श्रीपुरन्दरदास जी (1979)	के.सीतारामय्या
	नायक श्रेष्ठ पुरन्दरदास (1979)	आद्य रामाचार्य

116080
18/11/04
SHIMLA

कन्नड के ख्यात हरिदास गुरु व्यासराय ने अपने प्रसिद्धनाम शिष्य पुरन्दरदास की प्रशंसा 'दास हो तो पुरन्दरदास' कहकर की थी जो आज भी सत्य है। पुरन्दरदास (स.ई1480 - 1564)कर्नाटक के हरिदासों के मुकुटमणि हैं। विजयनगर साम्राज्य के वैभव के चरमोत्कर्ष काल में 'नवकोटि नारायण' के रूप में सुविख्यात श्रीनिवास नायक (पुरन्दरदास के पूर्वाश्रम का नाम) का दैवानुग्रह से हरिदास दीक्षा ग्रहण करना एक रोमांचकारी घटना है। बताया जाता है कि पुरन्दरदास ने 4,75,000 पदों की रचना की है। पर इनमें से बहुत कम पद हमारे हाथ लगे हैं। इन पदों को भक्ति, संगीत और साहित्य का त्रिवेणी संगम कह सकते हैं। ये पद 'पुरन्दरोपनिषत्' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें अंकित मानव जीवन के गुणदोषों पर ध्यान दें तो लगता है कि ये मानव मात्र के लिए प्रिय लगनेवाली आचरण संहिता हैं। "कर्नाटक संगीत पितामह" कहलानेवाले पुरन्दरदास के पद न केवल कर्नाटक में बल्कि अन्य प्रान्तों में भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

इस छोटी-सी पुस्तिका में पुरन्दरदास के जीवन सम्बन्धी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित न करके उनकी रचनाओं के आधार पर उनके व्यक्तित्व का सार संग्रह प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पुरन्दरदास के स्वर्गवास हुए चार सौ वर्ष बीते, फिर भी उनकी प्रासादिक वाणी आज भी सामयिक है, लोकप्रिय है।

इस ग्रन्थ के रचयिता डा.जी.वरदराजा राव मैसूर विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त कन्नड
प्राध्यापक हैं। विश्वविद्यालय के कन्नड अध्ययन
साहित्य प्रकाशन योजना के अन्तर्गत डा.राव
है। दास साहित्य पर इनके कई आलोचनात्मक
हृदय" इनकी मौलिक रचना है। विश्वविद्यालय
हरिदास साहित्य पर ग्रन्थ लेखन में भी लगे रहे।

Library IIAS, Shimla
H 891.481 409 2 P 97 R
00116080

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

Purandaradas
ISBN 81-7201-119-9